Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना चंदा आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भेजें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

अब चंदे की रियायती दर हैं :

वार्षिक : 80 रुपये

अर्धवार्षिक : 41 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/[illegible] माह के लिए 'सारिका' [illegible] की व्यवस्था करें. समुचित [illegible] राशि संलग्न है.

नाम.................

पता.................

....

हस्ताक्षर.............

चंदा तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :

सर्कुलेशन मनेजर,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३५०; १ से १५ फरवरी, १९८४

कहानियां

10. लपटें : **नवारुण वर्मा**
19. सिलसिले खत्म नहीं होते : **कैलाश नारद**
22. प्रस्थान : **नरेंद्र मौर्य**
31. हड़ताल : **विश्वनाथ**
34. शर्त : **एस. एम. चांद**
36. किस्सा पांचवें दरवेश का : **चंद्रमोहन प्रधान**
43. खबर : **धीरेंद्र अस्थाना**
46. लवर्स : **सुरेंद्र अरोड़ा**
58. बूढ़े पीटर की कब्र : **जयशंकर**

धारावाही आयोजन

63 दशार्क (ग्यारहवीं किस्त) : **जैनेंद्र कुमार**

लघु रचनाएं

12. मानव अस्थियां : **पालीवाल दिनेश गीत**
25. ग़ज़ल : **अहद 'प्रकाश'**
33. परिस्थिति का जहर : **ज्ञानदेव तिर्यगधार**
37. इमेज का दुखियारा भारतीय लेखक : **श्रीलाल शुक्ल**
38. आहट : **अनिल रिसवुड 'बजरंगी'**
39. ग़ज़ल : **आशुफ्ता चंगेजी**
48. पितरों का तर्पण : **कन्हैयालाल सरस**
50. सौदेबाजी : **संतोष**
56. कमीशन : **यशपाल वैद**
59. सहयोग : **सतीश आलोक**
65. नारी का आदर्श : **जैनेंद्र कुमार**

अन्य आकर्षण

6. आपकी बात
16. तुलसीदास चंदन घिसैं : **हरिशंकर परसाई**
28. गलियां, जहां इतिहास कैद है : **बाला दुबे**
32. मथुरादास की डायरी : **मथुरादास**
41. तस्वीर बोलती है : **एन. त्यागराजन**
45. ...**और भुलाये न बने**
51. कथासूत्र : **राकेश वत्स**
52. शहर के बीच उभरता एक और शहर : ग्वालियर : **हरीश पाठक**
55. मेरे सात जनम : **हंसराज रहबर**
61. शरारत : **चंद्रकांत बक्षी**
67. भरतमुनि के वंशधर : **सूत्रधार**
69. पखवारे की पुस्तकें : **चंद्रकांत बांदिवडेकर, राजकुमार गौतम**
72 हलचल

विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर

73. पुस्तक का उपयोग और दुरुपयोग : **सुरेश उनियाल**

सहायक संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम
आवरण : **धर्मवीर जयनर**
सज्जा : **रवि शर्मा**

संपादकीय पता : **10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकी बात

वैशिष्ट्य परिवर्तन

'सारिका' के विशेषांकों से कहीं ज्यादा विशिष्ट अब इसके सामान्य अंक लगने लगे हैं. अंक 345 में यह बात साफ दीखती है. कहानियों का चयन, अच्छा है. 'मुझे घर ले चलो' (गोविंद मिश्र), 'तमोली हावी हो रहा है' (गिरिराज किशोर) कहानियों में शिल्प की बुनावट और कथ्य की निर्मिति के पीछे, लेखक मौजूद रहा है, जिससे संप्रेषण बाधित होता है. 'बूढ़े' (महीप सिंह) कहानी में ऐसा क्या है, जिसके चलते, इसका होना कहानी मान लिया जाय? 'गिद्ध' (मधुकर सिंह) सिर्फ एक बदरंग फोटोग्राफ है. यह कहानी को पुनः वहां ले जाने की-सी बात है, जहां से हिंदी कहानी ने चलना सीखा था.

इससे इतर, इस अंक में एक कहानी है 'यातना शिविर' (राबिन शॉ पुष्प). जब लेखक कोई कहानी पाठक के लिए (समीक्षक के लिए नहीं) लिखता है तो यकीनन वह संवेदन के उस बिंदु से शुरू होता है, जहां से आदमी की तकलीफों से होकर गुजरने की वेदना वह स्वयं झेलकर लिखता है. 'यातना शिविर' इस अंक की ऐसी कहानी है, जिसमें जिंदगी के भीतर शामिल होती जा रही घिनौनी राजनीति का वह चेहरा है, जो बिना दस्तक दिये हमारी शख्सियत बन जाता है... और हम सब हतप्रभ स्वयं को उसी 'यातना शिविर' में पाते हैं, जहां रमा श्रीवास्तव जूझ रही है... पर उसकी साहसिकता हतप्रभ नहीं करती—हां, हम सबको नपुंसक करार अवश्य देती है. कथ्य के भीतर वह रही जिजीविषा को जीवंत शिल्प के माध्यम से कथाकार राबिन शॉ पुष्प ने जिस तरह रेखांकित किया है, वह कथा-फलक के विस्तार का शुभ संकेत है.

▣ **अवधेश, खगौल-801105**

बहुत कुछ पाया

अंक 345 में महीप सिंह की कहानी 'बूढ़े' का शिल्प बहुत मार्मिक है. राधेश्याम की कहानी 'आखिरी गवाह' मन को बहुत भायी. लघुकथाओं में 'निकम्मा' श्रेष्ठ लघुकथा है, आप नवलेखकों को भी सारिका में सक्रिय स्थान देकर महान कार्य कर रहे हैं.

▣ **ज्वाला प्रसाद शर्मा 'विपुल', कोटा**

करुणा की पड़ताल

अंक 345 पढ़कर सुखद अनुभूति हुई, इसलिए कि स्थापित कहानीकारों के बीच भी राधेश्याम की कहानी (आखिरी गवाह) ने संतुष्ट किया. इस कहानी में जब आखिरी गवाह (लेखक) भी, अपना भेद खुल जाने के डर से, पापी समाज के साथ मिलकर उस नारी पर पत्थर मारता है, तब भीड़ से आवाज उठती है "करुणा मर गयी... करुणा मर गयी." यह आवाज प्रतीकात्मक है जो उस नारी के मरने से ज्यादा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अवस्थित करुणा के मरने की घोषणा करती है. शायद इसलिए यह आवाज पाठक के भीतर उतरकर बस जाती है जिसके साथ पूरी कहानी का अस्तित्व भी टिका रह जाता है.

▣ **शिवपूजन प्रसाद, रांची**

विचारों के नये आयाम

'कथासूत्र' स्तंभ शुरू करके आपने प्रबुद्ध पाठकों को चिंतन की अच्छी सामग्री दी है. राकेश वत्स को बधाई दें. केवल एक सुझाव है लेखक के लिए, चिंतन सामग्री को कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक रचनाओं से जोड़कर भी पेश किया जा सकता है. 'चित्रलेखा' की मिसाल बहुत सटीक लगी. इसी प्रकार कथासूत्र से जुड़ी रचना भी प्रकाशित हो सकती है.

▣ **योगेंद्र बख्शी, पटियाला**

मध्यमवर्ग की दशा

सारिका का 'महिला कथाकार अंक' (344) और अंक 345 पूरा पढ़ गया. सुश्री मृणाल पांडे की कहानी 'एक स्त्री का विदागीत' में मध्यमवर्गीय परिवार का अच्छा खाका खींचा गया है. किंतु दूसरी किस्त में प्रसव-पीड़ा का फ्लैश बैक कुछ अजीबोगरीब लगा.

श्री गोविंद मिश्र की कहानी 'मुझे घर ले चलो' मर्मस्पर्शी है. इस कहानी में गनेसी के जिंदगी और मौत से जूझने की दास्तान हृदय को बेधने वाली है. कितनी कशिश है इस वाक्य में—"मेरे कपड़े... अगर तुम नहीं लायीं तो मैं इन्हीं कपड़ों में चला जाऊंगा.."

राकेश वत्स का 'अब ललित साहित्य की जरूरत ही क्या है?' पढ़ा. इस बात से सहमत हूं कि साहित्य की सर्जनात्मकता की बड़ी पहचान यही होती है कि वह सबसे पहले अपने सर्जक की ही मानसिकता को प्रभावित करता है.

लघुकथा 'बदजात' गागर में सागर है. शैलेंद्र कुमार कोठारी को बधाई. 'नये लेखक और आलोचना' पढ़कर मोहन राकेश जी की याद ताजा हो गयी. सृजन संवेदना के बिना कोई सच्चा आलोचक हो ही नहीं सकता यह मेरा निश्चित मत है.

▣ **गुरुकृपाल सिन्हा, नयी दिल्ली**

गुप्तचर माहात्म्य

निस्संदेह जासूसों का जीवन अत्याधिक जोखिम भरा होता है और कभी-कभी उनका अंत दर्दनाक एवं हृदयविदारक होता है. फिर भी राज्य के लिए उनकी आवश्यकता सदैव रही और रहेगी. जिस प्रकार मनुस्मृति, रामायण, महाभारत तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि प्राचीन ग्रंथों में गुप्तचरों की आवश्यकता, महत्व, उपयोगिता तथा कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया, मानना पड़ेगा कि गुप्तचरों अथवा ज[illegible]ों का हमारे देश में अतिप्राची[illegible]ल से महत्व रहा, उपरोक्त प[illegible] में 'गुप्तचर युधिष्ठर के' लेख में संपूर्ण रचना को पढ़ने के बाद गुप्तचर के महत्व को समझा जा सकता है.

▣ **शकुनचंद गुप्त विशारद, रायबरेली**

गुप्तचरी तब और अब

'सारिका' का अंक 346 पढ़ने को मिला. गुप्तचरी के विषय में उत्कृष्ट लेखों को प्रकाशित कर आपने हम लोगों के ज्ञान में काफी वृद्धि की है. वस्तुतः 346वां अंक अपने आप में पूर्ण है, जिसकी प्रत्येक कहानी व लेख गुप्तचरी गाथा की लोमहर्षक कार्यवाही से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवगत कराते हैं.

सी. आई. ए. और के. जी. बी. संसार की सर्वश्रेष्ठ गुप्तचर संस्थाएं हैं. इनकी तुलना में भारत की गुप्तचर संस्था 'रा' नगण्य लगती है.

किसी भी राष्ट्र के सर्वोदयमुखी विकास के लिए गुप्तचरी संस्था का होना अत्यावश्यक है ताकि वह अपने और पड़ोसी देशों के बारे में अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर सके. इसके बिना बहुधा दूसरे देश द्वारा राजनैतिक असंतुलन और आक्रमण की संभावना बनी रहती है. भारत एक बड़ा देश है जिसके अनेक मित्र और शत्रु देश हैं. क्या रा जैसी गुप्तचर संस्था को नगण्य जैसी अवस्था में रहना चाहिए?

हम लोगों का इतिहास गवाह है कि आज से 2500 वर्ष पूर्व वैशाली जनपद में मगध राजा श्रेणिक बिंबसार के महामात्य वर्षकार द्वारा गुप्तचरी के कैसे अनोखे और उन्नत रूप अपनाये जाते थे. वे इसे राजकाज के लिए एक आवश्यक अंग मानते थे.

▣ **आनंद मोहन गुप्त 'महिपाल', सहरसा (बिहार)**

अनछुई, अनकही बातें

सुनने और सुनाने में गुप्तचरी कितनी सहज सरल लगती है, यथार्थ की धरती पर उतनी है नहीं. गुप्तचरी की रहस्य-रोमांच की कहानियां यद्यपि आज बेस्ट सेलर की चाट बन गयी हैं. लेकिन आपने 1 दिसंबर से 15 दिसंबर 83 के 'गुप्तचरी विशेषांक' की कहानियों में गुप्तचरी के इतिहास, इसकी पहुंच, इससे जुड़े अनेक छल-प्रपंच तथा इसकी गहराई में पहुंचकर तथ्यपूर्ण लेख गुप्तचरी विधा की अनेकानेक अनछुई तथा अनकही और अछूती बातों पर प्रकाश डालकर अपने पाठकों को कुछ जानने और समझने का मौका देकर एक स्तुत्य कार्य किया है.

लेकिन आज 25 दिसंबर तक दूसरा विशेषांक बाजार में नहीं मिल पाया. इसका दुःख है. पाठकों की बेजारी का भी ध्यान रखने का प्रयास किया जाता तो बेहतर था.

▣ **सूर्यनारायण त्रिपाठी, नयी दिल्ली**

लाक्षागृह : एक तथ्य यह भी

'सारिका' अंक 346 में हरिमोहन शर्मा ने 'जासूसी कथा साहित्य की यात्रा कथा' में लाक्षागृह के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं जो वास्तविकता से पर्याप्त भिन्न प्रतीत होते हैं.

बदायूं के जिला गजेटियर के सहयोग से श्री रघुवीर सहाय द्वारा लिखी पुस्तक 'बदायूं जिले के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास' में यही सब इस प्रकार लिखा गया है—"कहा जाता है कि पांडवों के रहने के लिए कौरवों ने लाक्षागृह का आयोजन किया. तब वह गृह बदायूं स्थित उसावां के समीप बारा गांव में ही बनवाया गया था. दुर्योधन ने उसे देखने के लिए विदुर महाराज को भेजा. जब वह वहां पहुंचे और उन्होंने लाक्षागृह को देखा तब उनको दुर्योधन की कुटिल नीति का पता चला कि यह भवन पांडवों के नाश के लिए बनवाया गया है. उनके ही आग्रह पर निर्माण करनेवालों ने उसमें एक सुरंग बना दी जिसके द्वारा पांडव बाहर निकल सकते थे. और सुरंग के मुहाने पर एक स्तंभ स्थापित कर दिया गया जिसको देखकर वे सुरंग की पहचान कर सकें. ऐसा ही हुआ. जब लाक्षागृह में पांडवों के प्रवेश करने पर उसमें आग लगा दी गई, वे तुरंत सुरंग के द्वारा बाहर आ गये और उसावां की ओर बढ़ गये."

यदि पांडवों को किन्हीं तथाकथित गुप्तचरों द्वारा पूर्व सूचना मिल चुकी होती तो वे उसमें प्रवेश ही क्यों करते और साफ बच निकलने की स्थिति आती. यहां विदुर को भी गुप्तचर की संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि उन्होंने भावनावश सुरक्षा की व्यवस्था तो की, लेकिन दुर्योधन के भय से पांडवों को पूर्व सूचना नहीं दी थी.

मैं बदायूं जिले के स्थान अभियानों पर शोध कर रहा हूं. अस्तु उपरोक्त तथ्य से संबंधित हुआ. सही जानकारी देना मैंने अपना दायित्व समझा. इसके पीछे कोई आलोचना, दुर्विचार लेशमात्र नहीं.

▣ **अवधेश पाठक, बदायूं**

कौन बड़ा?

गुप्तचरी की कहानियों का दूसरा विशिष्ट अंक, प्रत्येक पहलू से, प्रथम अंक पर हावी होता है. भंग के सम्राट दादा अमृतलाल नागर की व्यंग्य कहानी 'का०ल्डंड की चोरी' विश्व व्यंग्य साहित्य की अप्रतिम रचना है. कल्पना की अनंत उड़ान में पाठक गुम हो जाता है. नागरजी की कलम का नशा दिलो-दिमाग पर तारी हो जाता है . अन्य रचनाएं भी सशक्त हैं एवं गुप्तचरी कथाओं की अनोखी शैली

योग सूचना

अकुलाहट भरी दस्तक

'सारिका' के नवीनतम अंक (346) में रांची के श्री राकेश कुमार का 'कोई सुगबुगाहट नहीं' शीर्षक से चेतना को उन्मथित करने वाला पत्र पढ़ा. 'सारिका' जैसी पत्रिका के माध्यम से उन्होंने समस्त देश की प्रबुद्ध मनीषा के सामने एक जलता हुआ प्रश्नचिह्न उपस्थित किया है और चिंतन के बंद कपाटों पर एक अकुलाहट भरी दस्तक दी है. उन्हें साधुवाद देते हुए मैं उन्हीं के कथ्य को गहराते हुए दो शेर प्रस्तुत करना चाहूंगा—

घोंप ली भूखे जमूरे ने छुरी ही पेट में,
भीड़ खुश होकर बजाये जा रही है तालियां,
इस मोहल्ले में महीनों से रही फाकाकशी,
इस मोहल्ले को मल्हारें लग रही हैं गालियां.

▣ **शिव ओम अंबर, नुनहाई, फर्रुखाबाद**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामा

विचारशील महिलाओं की विशिष्ट मासिक पत्रिका

वामा सिर्फ पत्रिका ही नही एक बेहतर दृष्टिकोण भी है। **वामा** एक ताज़गी भरे सरल अन्दाज़ और परिचित भाषा में नारी के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को उजागर करती है। **वामा** निश्चय ही सामान्य महिला-पत्रिकाओं से हटकर है।

सरलता का मतलब सतहीपन नहीं है। **वामा** की आकर्षक लुभावनी सरलता के पीछे एक गहराई है। हर अंक में नया आकर्षण, नए विषय।

विषय चाहे घर-परिवार हो या देश-विदेश;
हस्तशिल्प हो या खेल की दुनिया;
साहित्य औ… हो या सैर-सपाटा…
विज्ञान हो या फिल्म-जगत;
नारी-तन की जानकारी हो या नारी-मन की;
बच्चों का पालन-पोषण हो या खुद का भविष्य-निर्माण,
नारी की निजी समस्याओं का ठोस समाधान—**वामा**

आप वामा के हर अंक का बेसब्री से इंतजार करेंगें

वामा टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

ARMS/D 1112 84/A

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व अनूठी रचना-प्रक्रिया से परिचय कराती हैं.

▣ सतीश राठी, इंदौर

रोमांच ही रोमांच

'सारिका' का अंक 346 तथा 347 दोनों देखे. गुप्तचरी के विषय में नूतन जानकारियां प्रदान कराने के लिए 'सारिका' वास्तव में बधाई की पात्र है. हर पृष्ठ पर एक रोमांच और जानकारियों से भरा आश्चर्य प्राप्त हुआ. पूरा अंक मैंने एक ही सप्ताह में पढ़ डाला. दोनों ही विशेषांक संग्रहणीय हैं और प्रशंसा के पात्र हैं.

विशेषांकों में अन्य रचनाओं के अलावा 'आढ़तिए का मुंशी' और 'अंतिम अस्त्र' ने काफी प्रभावित किया.

▣ संजय 'सरल', इलाहाबाद

देर आयद दुरुस्त आयद

गुप्तचरी की कहानियों के दोनों विशेषांक यद्यपि अप्रत्याशित विलंब से प्राप्त हुए, किंतु, सुखद आश्चर्य हुआ. यह देखकर कि कुल दो सौ पृष्ठों के विशेषांक में मात्र 17–18 पृष्ठों पर ही विज्ञापन थे. टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन की किसी भी पत्रिका के साधारण अंक तक में इतने कम विज्ञापन कभी नहीं दिये गये. जाहिर है कि विशेषांक के मूल्य बिल्कुल नहीं अखरे. स्तरीय रचनाओं की बधाई देना तो ऐसा लगता है जैसे कोई पति नित्य अपनी पत्नी का स्वादिष्ट भोजन के लिय धन्यवाद करता हो, अतः मैं बधाई तो इस बात के लिये दे रहा हूं कि अंक में पाठकों के लिये प्रचुर पठनीय-सामग्री थी. रचनायें सभी प्रशंसनीय थीं.

▣ डा. सुशील कुमार गुप्त, खगड़िया

वर्षांत आशाजनक वर्षारंभ आशातीत

'सारिका' के दिसंबर 1983 के दोनों अंक (346 और 347) विशेष रुचिकर लगे. कारण, जासूसी साहित्य मेरी प्रिय पठनीय सामग्री है और आपने दोनों अंकों में स्तरीय जासूसी साहित्य का बहुत अच्छा डाइजेस्ट पेश किया है. कुछ अपने यहां के श्रेष्ठ जासूसी साहित्य का भी देना चाहिए था, जैसे, चंद्रकांता संतति या भूतनाथ के अंश, गोपालदास गहमरी की कोई कहानी आदि. अपने यहां पता नहीं क्यों यह साहित्य बहुत उपेक्षित रहा है, और इसे लिखना या पढ़ना लोग अपमान की बात मानते रहे हैं. पाब्लो नेरुदा ने कहा था कि अगर दुनिया में प्रलय आ जाये तो वे दो चीजें जरूर बचाना चाहेंगे—एक तो अपनी प्रेमिका और दूसरी अपना प्रिय जासूसी उपन्यास. हां, इधर जब से लोगों ने सुना है कि मुक्तिबोध अंग्रेजी जासूसी उपन्यास बहुत पढ़ते थे तब से ऐसे साहित्य की बिक्री साहित्यकारों के बीच बढ़ गयी है. योगेश गुप्त के यहां मैंने अगाथा क्रिस्टी का अच्छा संग्रह देखा है. मुझे उम्मीद है जल्द ही वे कोई जबर्दस्त उपन्यास देंगे.

अब कुछ 'सारिका' के नववर्ष शुभकामना अंक (जनवरी 1–15,1984) के बारे में भी. 'पीढ़ियां आमने-सामने' में जैनेंद्र जी अपनी सोच में अधिक पुख्ता जमीन पर खड़े लगे. गोविंद मिश्र उनके सामने नहीं टिक पाये. ऐसा लगा कि उनके पास जैनेंद्र जी से न तो कुछ कहने के लिए है न कुछ पूछने को, चंद जिज्ञासाओं के सिवा. भारतीजी ने लेखक के 'स्टेटस' को पाठक से जोड़कर एक सही बात क[illegible] चाही लेकिन मिश्र जी की बोलास के कारण बातचीत भटक गयी. नहीं तो चुनाव कहीं यह बात भी उभरती कि हिंदी के पाठक को बंगला लेखक क्यों ले उड़ता है और हिंदी लेखक सरकारी खरीद की बैसाखी के सहारे समाज को बदलने या प्रयोगधर्मी दार्शनिकता की ऊंची अटारी पर चढ़ पाठक को फिल्मी या फुटपाथी हस्तियों को सौंप कर अपनी हीनता के आंसू बहाता है. वैसे यह दिलचस्प आयोजन है. हां, अगले आयोजनों में यह कोशिश जरूर करें कि बातचीत एक दूसरे के साहित्य को संदर्भ में रखकर हो, और यदि नये लेखक पुरानों को पढ़ते हैं—तो पुरानों का भी यह कर्तव्य है कि नयों की एकाध किताब पढ़कर ही उनके रूबरू हों. उनके उपदेशामृत से ही काम नहीं चलेगा.

नामवर जी से बातचीत बड़ी नास्टैलिजक लगी. उनकी कहानी संबंधी चर्चा पढ़कर बीसेक साल पहले, नयी कहानी के शुरुआती दौर की सुहानी यादों में खो गया और इच्छा होने लगी कि उससे कभी बाहर न निकला जाये. ☐

▣ रमाकांत, गोकुलपुर, दिल्ली

एक और व्यक्तित्व से रूबरू

'सारिका' का अंक 347 पढ़ा. गुप्तचरी कथाएं पढ़कर हृदय रोमांचित हो आया. लेख अति विशिष्ट थे. विशेषकर 'कुत्तों को गुप्तचरी का प्रशिक्षण' एवं 'वह केवल गुप्तचरी के लिए जन्मा था'. के. जी. बी. संस्था के बारे में देकर आपने एक प्रभावकारी गुप्तचर संस्था का परिचय कराया.

कहानी 'कालदंड की चोरी' श्री नागर के एक अलग ही व्यक्तित्व को मुखर करती रही और हिंदी लेखकों के पाश्चात्य बहाव को दर्शाती रही.

▣ ज्ञानेश श्रोत्रिय, ग्वालियर

होनहार बिरवान का दर्द

'सारिका' अंक–346–347–दोनों पढ़े. अंतरराष्ट्रीय स्तर तक के गुप्तचरी कारनामे, विवशताओं में सिसकते होनहार बिरवान का दर्द, और भोली-मासूम लड़कियों की अच्छे जीने तथा परिवार के उत्थान के लिए, इसे सांसों-सा अपनाना, विवरण पढ़ा. जिसकी कल्पना , आम जनता तक नहीं कर सकती और ना ही परिवार वाले— वहीं जोखिम भरे पैंतरे किस तरह नटबोल्ट कसते चले जाते हैं कि अच्छा भला इंसान भी पुर्जों का पुतला बन जाता है. एक तरफ भावनात्मक पक्ष की प्रबलता से विचलित-सी हो गई. पर, वहीं दूसरी तरफ विचारात्मक तर्कों ने स्थापित व्यवस्थाओं में ना होने वाले कामों को करके सिद्ध कर दिया कि वह कितनी तीक्ष्ण-बुद्धि और दूरदर्शिता का स्वामी है. ☐

▣ अपर्णा चतुर्वेदी 'प्रीता', औरंगाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लपटें

नवारुण वर्मा

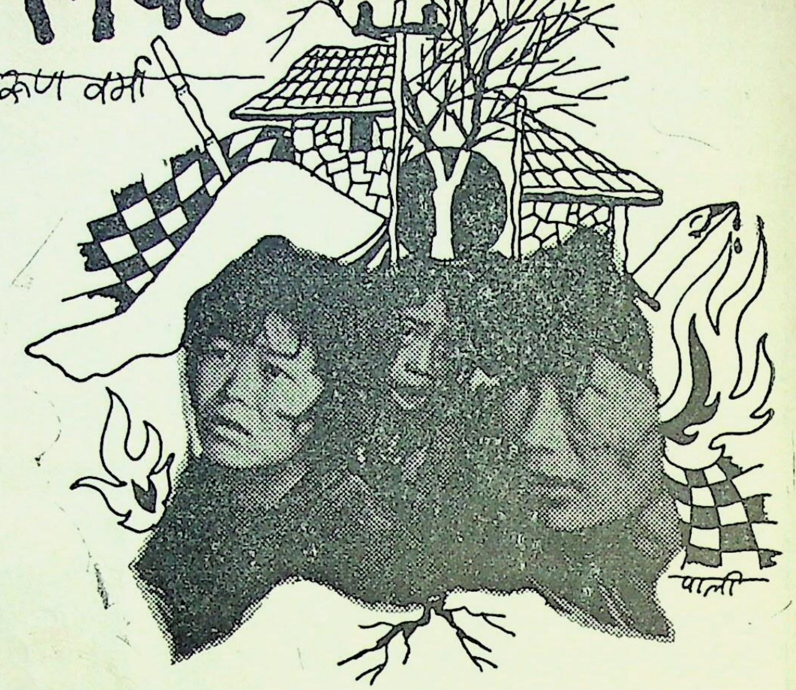

मतदान केंद्र के बरामदे में मेज पर रखी खाली पेटी को मुहरबंद कर पुलिस के जवान बड़ी सावधानी से मोटर पर चढ़ा रहे थे. बंदूकों से सजे होने के बावजूद उनके चेहरों पर परेशानी और खीझ के भाव साफ थे. पिछले पांच-छह दिनों से क्या उन्हें कम तनाव और आतंक से गुजरना पड़ा है? कितनी कठिनाई से इस स्कूल के मतदान केंद्र में पहुंचे थे. जहां न खाने का अच्छा इंतजाम था और न पानी का. ऊपर से उन्हें सख्त हिदायत थी कि पानी के बारे में वे पूरी तरह होशियार रहें. हो सकता है कि पानी में कहीं कुछ विषैली चीजें मिली हुई हों. कहीं से कोई हमला न हो जाये, इसी सोच में रातें जागते बीती थीं. तिस पर कुर्सियों मेजों पर यहां तक कि फर्श पर बैठने, लेटने की गुंजाइश न थी, हर जगह 'बांदर केकोवा' लगा दी गयी थी, जिससे शरीर खुजलाते सबका बुरा हाल था. वे आपस में चर्चा करते थे. ऐसे चुनाव से जिंदगी में उन्हें पहली बार पाला पड़ा है. कैसा विचित्र है यह चुनाव! कैसा अद्भुत है लोगों का असहयोग! वे सोच रहे थे, आज साढ़े तीन बजे के बाद उनकी परेशानियों का अंत हो जायेगा. किसी तरह जान सही-सलामत लेकर अजनबी-से वे जहां से आये थे, वहीं लौट जायेंगे. सभी मन ही मन अपने ईष्ट देव का नाम जप रहे थे, किसी तरह इस मुसीबत से, इस परेशानी से छुटकारा तो मिल जाये.

लेकिन परेशानी कब मिटे क्या ठिकाना? शाम होने के पहले ही पांच-छह किलोमीटर कच्ची सड़क पार कर राज मार्ग पर पहुंचना है. अंधेरा हो जाये तो उग्रवादी कहां, किस तरह से हमला बोलकर पेटी छीन ले जायें, कौन जाने! तिस पर कच्ची सड़क के जितने लकड़ी के पुल थे, जला डाले गये हैं, कई दिनों से आवागमन बिलकुल ठप्प हो चुका है. अब फिक्र यही है कि इस खाली मतदान-पेटी को सही सलामत कैसे सदर पहुंचा दें. पता नहीं, रास्ते में कहां कोई बम रखा हो, कहां फटे क्या ठिकाना.

यहां के कर्मचारियों ने चुनाव कार्य से पूरा असहयोग कर दिया था, सरकार उन्हें पदोन्नति का प्रलोभन देकर, सहयोग न देने पर नौकरी से बर्खास्त कर देने की धमकी देकर भी किसी तरह से सहमत नहीं कर पायी थी. कर्मचारियों ने संकल्प किया था जब तक विदेशी नागरिकों को शिनाख्त कर, मतदान-सूचियों से उनके नाम हटा नहीं दिए जाते, मतदाता-सूचियों का संशोधन नहीं हो जाता, तब तक यहां कोई भी चुनाव वैध नहीं. वे किसी भी अवैध चुनाव में सरकार से सहयोग नहीं करेंगे. लेकिन सरकार डटी हुई थी, किसी भी कीमत पर चुनाव करवा कर रहेगी. इस कारण, इस केंद्र में पच्चीस सशस्त्र जवानों का जत्था ले बिहार के ये कर्मचारी चुनाव-संचालन के लिए आये थे. घर से असम आते समय उनका कलेजा धड़क रहा था. हजारों बार देवी-देवताओं की मनौतियां की थीं, लेकिन सरकारी हुक्म. . उन्हें जाना ही पड़ेगा असम. . . घर के लोगों ने आंसू बहाये थे, उन्हें भी महसूस हो रहा था कि महज राजनीतिक स्वार्थ के लिए दूसरे राज्य के अंदरूनी मामले में किसी राज्य के कर्मचारियों को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, पर कानून ने उन्हें लाचार कर दिया था. उन्हें क्या पता था कि इस अनजान अंचल में उन्हें कैसी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा. वे चकित थे कि इतने प्रयास के बावजूद इस मतदान केंद्र में एक भी मतदाता वोट डालने नहीं आया. ग्रामीणजनों की इस अद्भुत एकता से वे दंग थे.

डालिमी गांव की स्वयंसेविकाओं के साथ [illegible]ान केंद्र से थोड़ी दूरी पर निगरानी कर रही थी. स्वयंसेवक लड़के नौजवान भी इधर-उधर छिपे सावधानी से यह देख रहे थे कि कोई षड्यंत्र का शिकार बनकर वोट डालने न आ जाये, चुनाव कर्मचारी और पुलिस के जवान देख रहे थे. सैकड़ों आंखें उन पर टिकी हुई हैं. मोटर पर सवार होते हुए उन सब ने हाथ उठाकर इर्द-गिर्द बिखरे लोगों का अभिवादन किया. मोटर चल पड़ी.

गांव में फिर से मानो नयी जिंदगी लौट आयी. सब लोग उत्सुकता से जाकर वहां इकट्ठे हो गये. स्वयंसेविका डालिमी सबसे ज्यादा प्रसन्न थी, इतनी ज्यादा तैयारियां, इतने प्रचार के बावजूद गांव का कोई भी वोट डालने नहीं आया. यहां चुनाव कराने की सारी योजना व्यर्थ हो गयी. वह चहक उठी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दिल्ली हो या हो गुवहाटी. अपना खून अपनी माटी!'... जिस वक्त पूरे देश की दीवारों पर यह नारे लिखे जा रहे थे, उस वक्त असम में क्या हो रहा था?... शांति शांति या त्राहि-त्राहि?— पिछले ही वर्ष असम में हुए आम चुनावों और दंगों के संदर्भ में सरकार तथा जनता के पक्ष को, वहां मौजूद नागरिकों के माध्यम से उजागर करती कहानी—

"चुनाव समर्थकों को आखिर घुटने टेकने ही पड़ेंगे. शहीदों का बलिदान व्यर्थ नहीं होगा."

कुछ लड़के मतदान केंद्र में लगाये उम्मीदवारों के नामों के पुर्जे निकाल कर पढ़ने लगे थे. तीन उम्मीदवार मैदान में उतरे थे. सब लोग उनके नाम पढ़कर चर्चा करने लगे, कौन हैं ये उम्मीदवार? कहां के हैं? उम्मीदवार कैसे बने? जिनका नाम तक पहले कभी सुना नहीं, चेहरा देखने की बात तो दूर, जिनका कोई पोस्टर तक देखने में नहीं आया, उन्हें ही वोट देने को कहा गया है, जनता से जिनका कोई संबंध नहीं रह गया है, क्या वे ही थोपे हुए लोग जन-प्रतिनिधि बनेंगे? कैसा है यह षड्यंत्र? लोग कह रहे थे, अच्छा हुआ, हमारे केंद्र में कोई वोट डालने नहीं आया.

मगर मधुराम चिंतित था, बोला, "केवल हमारे केंद्र में, या ऐसे ही कुछ केंद्रों में वोट नहीं पड़े, इससे क्या होगा? दूसरी बात यह है कि चुनाव कर्मचारियों ने ही खुद मत पत्रों पर ठप्पा मारकर पेटी में न डाल दिए हों, इसका भी क्या ठिकाना? फिर सुना है कि उधर 'चर' अंचल में रहने वाले सारे विदेशी समर्थक कमर कस चुके हैं, वे वोट डालने के लिए तयार हैं. जो उन्हें रोकने जायेगा, उन्हें वे छोड़ेंगे नहीं. दूसरे पक्षवाले उन्हें भड़काकर शह दे रहे हैं. यह चुनाव नहीं, हमारे लिए मौत का पैगाम आया है भाइयो."

डालिमी हाथ उठाकर बोली, "हम मौत की छाती पर अपना इतिहास लिख जायेंगे. सारा षड्यंत्र व्यर्थ कर रहेंगे."

मधुराम बोला, "वह तो करना ही होगा! इधर यह तो खैरियत हुई कि ज्यादा अशांति नहीं हुई, न गोली चली! मगर आगे क्या होगा, कौन जाने, हमें हमेशा सावधान रहना चाहिए. यह चुनाव क्या था, हमारे बीच फूट का जहर फैलाया गया है. यह जहर कितना भयावह होगा, वह तो अब मालूम होगा. जहर से हमें तो मरना ही है, जहर फैलाने वाले भी बच नहीं पायेंगे!"

गांव सभा का सदस्य अनवर अली बोला, "मधुराम भैया, यकीन रखो, हम किसी भी कीमत पर अपने यहां अशांति होने नहीं देंगे. अपनी युगों की एकता सदैव कायम रखेंगे. फूट फैलाने वालों की दाल यहां गल नहीं पायी है, न गलने पायेगी."

डालिमी बोल उठी, "शहीदों के खून की लाज हम मिटने नहीं देंगे." लेकिन मधुराम के मन में जो गहरी आशंका बैठ गयी थी, इन कई दिनों तक कोशिश करने पर भी वह उसे भुला नहीं पाया है.

मधुराम कुछ जरूरी काम से गुवाहाटी गया था. सोचा था, शाम की फेरी से लौट आयेगा, लेकिन वहां जाकर वह जिस परेशानी में फंस गया था उसकी याद से ही छाती दहल उठती है.

उसका काम निपट भी नहीं पाया था कि अचानक समूचा बाजार धड़ाधड़ बंद हो गया. सिटी बस, रिक्शे, मोटर साइकिल सब दस-पंद्रह मिनट के अंदर बंद. सड़कें सहसा सूनी हो गयीं, अचानक बिजली भी गुल हो गयी. शाम के पहले ही आतंक का भयावह अंधेरा उतर आया. लोग सड़कों पर पैदल ही भागे जा रहे थे. मधुराम भी काम अधूरा छोड़ फेरी घाट की ओर भाग पड़ा. उसका दिल धड़क उठा था. क्या पता फेरी जहाज मिले या नहीं, लेकिन वह सोच रहा था कि कम से कम कोई नाव तो जरूर मिल जायेगी. अगर उसे पहले जरा भी पता होता कि आज बंद होने वाला है, वह क्यों आता? जहाज या नाव न मिले तो क्या उसे कम मुसीबत में पड़ना होगा? अलबत्ता पांच-छह किलोमीटर दूर फटाशिल बस्ती में उसका चचेरा भाई रहता है, जो पुलिस विभाग में है. मगर उसने सुन रखा था कि उस अंचल में उन दिनों काफी तनाव है, लगातार कई बम विस्फोट की घटनाएं उस अंचल के इर्द-गिर्द हो चुकी हैं, जिनमें दसियों लोग घायल हुए. दो घायलों की अस्पताल में मौत की खबर भी सुनी थी. उधर लोगों में दहशत फैली है, वहां की बाट-घाट का पता-ठिकाना भी तो उसे पूरा-पूरा मालूम नहीं. लोग उसे अजनबी जानकर पकड़ लें या मारें-पीटें तो कौन बचायेगा? फिर वह घर न पहुंच सके तो चिंता के मारे घर के लोग भी क्या कम बैचेन होंगे? आंदोलन की ओट में चोर-उचक्के भी क्या कम वारदातें कर रहे हैं? यह विचार दिमाग में आते ही, उसने तय किया था, चाहे जैसे भी हो, एक के बदले दस रुपया देकर भी हो, फेरी जहाज न मिले तो नाव-डोंगी से भी क्यों न हो.

मगर उस दिन फेरी-घाट ही सूना न था, सीढ़ीदार किनारे अपनी मस्ती में तल्लीन, राहगीरों की जरों से बिलकुल बेपरवाह, रसालाप में डूबे बैठे प्रेमियों के जोड़े भी न थे. शहर के हर नुक्कड़ पर जमे, हर सड़क पर बंदूक लाठीधारी, गश्त लगाते पुलिस, सी.आर.पी. के जवान. उसने व्याकुलता से इधर-उधर देखा था, नदी किनारे कोई नाव न थी, फेरी-जहाज दूसरी ओर के राजदुवार घाट पर निश्चल खड़ा था. अज्ञात आशंका से उसका अंतर भर आया. नदी के बीचों-बीच पहाड़ी पर 'उमानंद भैरव' का मंदिर-शिखर अब भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झिलमिला रहा था. अचानक उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और आकुलता से पुकार उठा, "उमानंद बाबा, तुम्हीं अब पार लगाओ!"

वह हाथ जोड़ सिर झुकाये था, तभी... "हेई, क्या करता है हियां?".. की अवाज से वह चौंक पड़ा था. गश्त लगाते हुए प्रेतों से सी.आर.पी. के कई जवान खड़े हो गये थे, रोबीली मूंछोंवाले एक मुस्टंड जवान ने आगे बढ़कर अपनी लाठी से उसकी पीठ कोंचते हुए गरजकर सवाल किया था.

वह सहम गया था, "साब, उस पार जाना था. न नाव है, न फेरी जहाज. बड़ी मुसीबत में फंस गया. अब बाबा उमानंद ही बचाये."

लाठी से उसकी पीठ पर एक और हुर्रा लगाते हुए जवान बमका, "उस पार जाना चाहता है. गधे का बच्चा!" और तब तक दूसरा जवान आगे बढ़कर हुमचकर उसके चूतड़ पर लाठी का भरपूर वार जड़ चुका था. वह चीख पड़ा था, "अरे ओ बाप, मर गया!"

"चीखता है साला," ऊपर से एक और लाठी जड़कर जवान आगे बढ़ गये, "सुअर की औलाद." उनकी भद्दी गालियां मधुराम के कानों में आज भी बज रही हैं.

वह कराहता हुआ, वहां से तेजी से चल पड़ा. शिकायत भी किससे करे? समूचा राज्य ही जब ऐसा ही उत्पीड़क, अराजक बन गया है. राह चलते निरीह, निरपराध लोगों को पीटकर घायल कर देना तो आम बात हो गयी है. पुलिस थाना सामने ही है, मगर वहां भी सुनने वाला कौन है? डी.सी. कोर्ट, हाई कोर्ट सब हैं, पर कोई सुनवायी कहां होती है? वह सोचता जा रहा था, किस अपराध से उसे यूं मार पड़ी? उसे इस बात का अचरज हो रहा था, अचानक इस तरह शहर बंद का कारण क्या है? मगर पूछे किससे?

हालांकि असम में तो बंद अब साधारण-सी बात हो गयी है. और इसके सिवा चारा भी क्या है? जनता के विरोध की जहां कोई सुनवायी नहीं होती, शांतिपूर्ण ढंग से अपनी मांग रखने के लिए कोई जुलूस तक निकालने में जहां पाबंदी है, सभी मूलभूत अधिकारों को जहां बेरहमी से खत्म कर दिया गया है, जरा-जरा-सी बात पर सामान्य लोगों पर पुलिस, सी.आर.पी. मिलिटरी के जवान खूंखार भेड़ियों जैसे टूट पड़ते हैं...

सच्चे समाचारों को दबाकर झूठे मनगढ़ंत समाचार फैलाकर लोगों को भ्रमित किया जाता है. जहां रेडियो जैसे समाचार-साधन की पवित्र विश्वसनीयता खत्म कर दी गयी हो, वहां चारा भी क्या है? गणतंत्र के नाम पर जहां झूठ-तंत्र का बोलबाला हो, जन-प्रतिनिधि नामधारी लोग बंदूकों, मशीनगनों के अलावा और कोई भाषा ही नहीं समझते... यह कैसा अद्भुत शासन है? आतंक और परेशानी के मारे वह भागा चला जा रहा था, मन ही मन गालियां दे रहा था, 'मैं न तो किसी आंदोलन में हूं और न किसी का सामान लूट रहा हूं, मुझे क्यों पीट रहे थे साले, मादर... साले, तुम चाहते हो कि इस असम को विदेशियों के ही हवाले कर दिया जाये, तो कर दो, हमें क्या है? हम तो मजदूरी करते हैं, करते रहेंगे. साले, राज तो करेंगे कोई दूसरे और मरते हैं हम...!'

सामने से एक और पुलिस-टुकड़ी आते देख वह ठिठक गया. मन ही मन बोला, 'साले, पकड़कर सीधे हवालात में ले जाकर बंद कर देते तो भी एक बात थी, हमें कोई एतराज न था, लेकिन निरीह प्राणियों को बेरहमी से पीटने का, उनका अपमान करने का अधिकार किसने दे दिया है?'

उसे याद आया, दो ही दिन पहले उसने अखबार में पढ़ा था, किसी अधिकारी ने कहा था कि सी.आर.पी. के जवान अब से भले लोगों को तंग नहीं करेंगे. उन्हें हिदायत दे दी गयी है. क्या वे उसी हिदायत को काम में ला रहे हैं? जो सरकार शासन चलाती है, उसके चलाने वाले लोग इतने झूठे, इतने मक्कार क्यों हो गये हैं?

लाचार होकर उसने तय किया, अब आज उस पार जाने की आशा करना व्यर्थ है. फटाशिल-में उसी चचेरे भाई के यहां आज रुकना ही पड़ेगा. वह लगभग दौड़ता-सा उसी ओर चल पड़ा. मार्ग सूना हो गया था. शाम की चिड़ियों जैसे लोग अपने-अपने घरों में जा छिपे थे. मधुराम जैसे इक्के-दुक्के लोग ही सड़क पर रह गये थे... और रह गये थे परम अभिमान से रोब गांठते, गश्त लगाते सी.आर.पी. के जवान.

लगभग छह किलोमीटर भागता-सा पार कर वह चचेरे भाई चंदन के यहां पहुंचा. चंदन का आठ-नौ साल का बेटा देबू बरामदे में कुर्सी पर बैठा, बाहर का नजारा देख रहा था. उसने अवांछित जैसी नजरों से मधुराम को देखा, पूछा, "कहां से आ रहे हो चाचा?"

स्कूल में आठवीं में पढ़नेवाला लड़का देबू, मधुराम उसे

लघुकथा

मानव अस्थियां

■ पालीवाल दिनेश गीत

बस बाढ़ग्रस्त क्षेत्र से गुजर रही थी, इंजन गर्म हो जाने से ड्राईवर ने बस रोक दी. यात्री नीचे उतर पड़े. करीब ही पशुओं की हड्डियों का ढेर था. विभिन्न व्यवसायों के यात्री ढेर के पास खड़े होकर बातें करने लगे.

"इन हड्डियों में फासफोरस, कैल्शियम आदि महत्वपूर्ण तत्व होते हैं," वैज्ञानिक ने कहा.

"ये हड्डियां पीसकर खाद के रूप में यदि खेत में डाल दी जायें तो फसल अच्छी होगी," कृषिवेत्ता बोला.

"अगर मेरी मिल में इन हड्डियों को पहुंचा दिया जाये तो मैं इन्हें पिसवा सकता हूं." मिल मालिक ने राय दी.

"अगर सरकार ठेका दे दे तो मैं सारी हड्डियां भेज सकता हूं." ठेकेदार ने मत प्रकट किया.

"मैं मिनिस्टर से कहकर आपको ठेका दिलवा सकता हूं, यदि बाढ़ राहत कोष में कुछ पैसा मुझे जमा करा दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो." मिनिस्टर के चमचे ने दलाली की.

"मेरे ट्रक आजकल खाली हैं, मैं उन्हें इस काम में लगा सकता हूं," ट्रांसपोर्ट कंपनीवाले ने कहा.

"अगले साल भी बाढ़ का ऐसा ही योग बनता है, और हड्डियों के ऐसे ही ढेर लगेंगे." ज्योतिषी बोला.

"महानुभावो, इन हड्डियों के ढेर में कुछ मानव अस्थियां भी नजर आ रही हैं."एक चिकित्सक ने कहा.

"बोली लगने पर सब एक भाव ही बिकेंगी." ठेकेदार ने मुस्कराकर कहा.

बस स्टार्ट हुई, सब बस की ओर दौड़ पड़े.

ढेर के पास बैठा बूढ़ा चौकीदार बड़बड़ा रहा था, "कितने स्वार्थी लोग हैं, हड्डियों के ढेर में मानव अस्थियों को देखकर बाढ़ में हुई जनहानि का किसी ने कुछ नहीं सोचा, शायद इसलिए कि अपनी-अपनी सोचनेवालों के कारण भविष्य इस बात के संकेत दे रहा है कि अब हड्डियों के ढेर में कुछ मानव अस्थियां मिलने के बजाय मानव अस्थियों के ढेर ही लगा करेंगे. □

● पालीवाल कुटीर, संगरिया, श्रीगंगानगर–335063

कई बार अपने साथ गांव ले गया है. पर उस वक्त उसकी बेरुखी से मधुराम को कुछ ठेस-सी लगी. मगर वह परेशानी में था, इसलिए उसने कुछ प्रकट होने नहीं दिया. पुलिस अधिकारी का बेटा, बाप का स्वभाव तो जरूर कुछ न कुछ आयेगा ही? बोला, "कुछ जरूरी काम से आया था मगर अचानक बंद होने के कारण फंस गया देबू. फेरी और नाव बंद है इसलिए जा नहीं सका! पिताजी कहां हैं?"

"उनकी बात क्या पूछते हैं, कहीं सरकारी काम में चक्कर लगाते होंगे. आजकल काम बढ़ गया है न. तुम आज रहोगे न? मां से बतला आता हूं."

वह उठकर अंदर चला गया. मधुराम कुछ समय बैठा रहा. कुछ देर बाद एक नौकर चाय-बिस्कुट लेकर आया. पीछे-पीछे देबू भी. उसके हाथ में एक कागज था. बोला, "चाचा, तुम चाय पीओ. मुझे थोड़ी देर बाद बाहर जाना है."

"लेकिन आज तो बाहर काफी गड़बड़ी होने की संभावना है. शहर में गली-गली सी.आर.पी. तैनात हैं. चारों ओर खतरा है. मुझे भी मार खानी पड़ी है."

"मार तो सबको खानी पड़ेगी चाचा!" फिर धीमी आवाज में कहा था, "और मारना भी पड़ेगा. मरे और मारे बगैर हमारी जाति जिंदा नहीं रहेगी."

"तो क्या तुम भी आंदोलन में हो देबू?"

देबू की आंखें सहसा जल उठीं, "यह क्या पूछते हो चाचा? बाप आज पेट के लिए पुलिस की नौकरी कर रहे हैं, मैं उनका बेटा हूं, तो असमिया नहीं हूं? हर असमी को आज आंदोलनकारी बनना होगा. तभी अपने पाप का प्रायश्चित होगा. तुम्हें पता नहीं, विदेशी समस्या का समाधान किये बगैर जबरदस्ती चुनाव की घोषणा कर दी है. हमारे प्रतिनिधियों को रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिया गया. इतना अन्याय. इसी के विरोध में यह अचानक बंद की घोषणा की गयी है. अब विदेशियों को बसाने के लिए चुनाव होगा, मतदाता सूचियों का संशोधन नहीं होगा. अब विदेशी ही वोट डालकर सरकार बनायेंगे, असम पर विदेशियों का राज होगा." देबू ऐसे बोलता गया मानो किसी आम सभा में भाषण दे रहा हो. "अंबिकागिरी राय चौधरी ने मरते वक्त कहा था न. . . 'असम गया, असम को बचाओ.'. . .सचमुच असम गया, अब इसका अस्तित्व कहां बचेगा?" उसने एक अखबार मधुराम के सामने फैला दिया, "देखो, चाचा, यह है असम के अखबार की हालत!"

मधुराम ने देखा, अखबार का आधे-से ज्यादा हिस्सा सफेद था. देबू बोला, "अब आंदोलन की, असम की जनता की कोई भी बात अखबार में नहीं छपेगी. सरकार जो कहेगी, वही चीज छपेगी. अब सच्ची खबर तक लोगों को नहीं मिलेगी, यह कैसी आजादी है? अगर यही आजादी है तो गुलामी किसे कहते हैं? हमें बिल्कुल कुचल डालने के लिए कितने बटालियन सी.आर.पी. आ रही हैं. कोई असमी वोट दे या न दे, चुनाव तो होकर रहेगा चाचा."

उस दिन मधुराम का अंतर कांप गया था. कितना भयंकर षड्यंत्र, कितना बड़ा विश्वासघात, इसका नतीजा क्या होगा!

मधुराम ने देबू के चेहरे की ओर देखते हुए पूछा, "क्या चंदन नहीं आया?"

"उन्हें अब छुट्टी कहां? स्पेशल ड्यूटी है. रहने-खाने का इंतजाम दफ्तर में ही कर दिया गया है. लेकिन चाचा, एक मुसीबत और है, कर्मचारियों के चुनाव के बहिष्कार की घोषणा से अधिकारियों में खलबली मची है. कर्मचारी ही चुनाव करवाने न जायें तो होगा कैसे यह चुनाव! एक प्राइवेट खबर सुनी है, अचानक समझे-बूझे, सलाह-मशविरा किये बगैर चुनाव की घोषणा से हमारा यहां का जरनैल डी.सी. तक बौखला उठा था, बक रहा था, 'उनका क्या है? शांत-व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व तो अंततः हम पर ही है न? गांव-गांव में पुलिस-मिलिटरी कहां तक तैनात करेंगे?' " वह कहता गया, "बड़े खतरनाक खेल की शुरुआत है चाचा! अगर कोई यह सोचता हो कि एक शिखंडी सरकार बीच में खड़ी कर असम को मिट्टी में मिला दिया जाये, उसका सिर कुचल कर विदेशियों के हाथ सौंप दिया जाये, तो यह कतई नहीं चलेगा. एक भी असमी जिंदा रहते यह षड्यंत्र सफल होने नहीं देगा."

दूसरे दिन तड़के एक रिक्शे पर सवार हो मधुराम रवाना हो गया था. रात की भयंकरता उसके मन से अब भी नहीं मिटी थी. उस ऊबड़-खाबड़ सड़क पर रिक्शेवाला इतनी तेजी से रिक्शा चला रहा था, जिससे उसे डर होने लगा किसी गड्ढे में पड़कर उलट न जाये. बोला, "भाई, हवा जैसे क्यों उड़ते हो? जरा धीरे चलो!"

रिक्शेवाला बोला, "भाई साहब, घंटे दो घंटे ही तो चलाना है रिक्शा, फिर कब क्या हो जाये, कब बंद हो जाये क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता, रोज-रोज के इस बंद, करफ्यू आदि के मारे हमारी रोजी-रोटी तो मारी गयी. इधर सरकार की बात मानो तो लड़के मारते हैं, लड़कों की बात मानो तो सी.आर.पी. पुलिस पीटती है. हम गरीब तो अजीब मुसीबत में फंसे हैं. अब तो और ज्यादा गंडगोल होगा. यहां चुनाव कराने की बात न जाने क्यों सूझी है. अब तो बिना कारण के सैकड़ों बेकसूर लोग मारे जायेंगे, वोट दें तो भी आफत, न दें तो भी आफत."

एक सामान्य रिक्शेवाला भी जिस बात को अच्छी तरह जानता है, उस असलियत को ऊंचे बैठे लोग कैसे नजरअंदाज कर जाते हैं? उसे याद आयी, मिंटू महाजन बता रहा था कि यहां के किसी बड़े अधिकारी ने कहा था—'चुनाव करवाने पर कुछ लोग मर सकते हैं, पर उतने लोग तो हर रोज दिल्ली की सड़क दुर्घटनाओं से मारे जाते हैं!' . .वह सोच रहा था, ऐसे लोगों के लिए आम जनता का जीवन कितना सस्ता, कितना मूल्यहीन हो गया है. कुछ लोग मरेंगे, मरने दो! उन्हें तो अपनी जिद पूरी करनी है!

वह जब फेरी घाट पहुंचा, प्रभाती सूर्य की चमकीली किरणें महानद ब्रह्मपुत्र की नाचती लहरों पर अठखेलियां करने लगी थीं. मधुराम जल्द से जल्द घर पहुंचने के लिए फेरी-जहाज की बाट न जोहकर किनारे लगी नाव पर सवार हो गया. नाववाला चप्पू एक ओर रखकर बीड़ी पी रहा था. बोला, "बाबू साब! जरा देर ठहरिए, कुछ और सवारी आ जाये, तब चलेंगे."

"भैया, किराया तुम ज्यादा ले लेना."

उसकी उतावली पर कोई ध्यान दिए बगैर नाववाला बोला, "बाबू साब, इतनी हड़बड़ी की क्या जरूरत? आपको कहीं चुनाव-टुनाव में जाना है क्या सुबह-सुबह."

"चुनाव-टुनाव में, मतलब?" मधुराम ने अचरज से पूछा था.

"अरे हां, हां, रात को लड़के हमें बता गये हैं. आप किसी पार्टी के आदमी हैं क्या? आंदोलन विरोधी किसी आदमी को हम नाव से नहीं ले जायेंगे."

तब तक और दो युवक नाव पर सवार हो गये थे. नाववाले ने अब नाव खोल दी. लोहित की छाती पर नाचती तरंगों के बीच नाव हिलती-डुलती चल पड़ी. दोनों युवक आपस में चुनाव की चर्चा कर रहे थे. . .

"यह सरकार भी कैसी सरकार है, विदेशियों के नेता जो कहते हैं उसी को मानती है. हम असमी जनों को बिल्कुल खत्म कर डालने पर तुली हुई है. हम अभी निहत्थे हैं, सी.आर.पी. मिलिटरी हमें मार रहे हैं. हमें न्याय नहीं मिलेगा तो याद रखो, असम भी एक 'वियतनाम' बनेगा!"

"वियतनाम बनने के लिए जिस मनोबल, शक्ति और सामर्थ्य की जरूरत है, वह क्या है हम में? हमें तो बड़ा संदेह है! कहीं सर्वनाश न हो जाये!"

"सर्वनाश होने में बचा ही क्या है? विदेशी नागरिक हमारे मालिक बनेंगे, हम अल्पसंख्यक बनकर उनके गुलाम होंगे. जिस जाति को मुगल भी पदानत नहीं कर सके थे, वही वीर लाचित की संतानें अब गुलाम बनेंगी! सर्वनाश होने में अब बचा ही क्या है? फिर मनोबल और शक्ति-सामर्थ्य तो समय पर ही दिखाई पड़ते हैं. . . शहीदर तेजेरे लुइत बै याब रांडली है. . . . (लोहित शहीदों के खून से लाल होकर बहेगा!)"

घर पहुंचते ही उस दिन पत्नी नीरदा कह उठी थी, "तुम तो उधर भाई के यहां रह गये, इधर क्या हो रहा है, कुछ चिंता भी है? एक आदमी को किसी ने कल शाम को मार कर नदी में फेंक दिया है, हमारी जान तो सांसत में पड़ी है. रातभर जागते बीती है."

लेकिन डालिमी निडर थी. बोली, "पिताजी, मां बड़ी डरपोक है. मैंने उसे बता दिया है, मां, मूला गामरू के वंश की बेटियों को डरना नहीं चाहिए. हम खुद हेंदान लेंगी."

नीरदा ने डांटते हुए कहा, "ठहर, ज्यादा बक-बक न कर. लोगों के होश-हवाश गुम हैं और यह है फिर गांव की लड़कियों को जमा कर मूला गामरू की लड़ाई सिखा रही है. अपनी बेटी को तुम्हीं समझाओ, हमें तो डर लगता है. कल शाम को अनवर अली और उसके दल के लड़के गांवभर में कहते रहे हैं, इस चुनाव का जो भी समर्थन करेंगे—जो चुनाव में खड़े होंगे, उनके परिवार को देशद्रोही माना जायेगा, किसी को छोड़ा नहीं जायेगा. वे नारे लगा गये हैं. . . आगते समाधान तार पिछत हे निर्वाचन! (पहले समस्या का समाधान करो, इसके बाद चुनाव होगा)"

डालिमी बोल उठी, "अब असमिया जाति इस बात को कभी नहीं सहेगी. हम अपनी जान तक देने को तैयार हैं."

मधुराम को अचरज हुआ कि जो समाचार गुवाहाटी में उसे काफी देर से मिला वह इतनी जल्दी गांव में कैसे आ गया? रेडियो, अखबार सब पर पाबंदी होने के बावजूद आंदोलन का समाचार कैसे बिजली की तेजी से फैलता रहा है? क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि असम का जनमत आज कितना चौकन्ना है.

मधुराम ने अनुभव किया था कि अब जबरदस्त लड़ाई ठन चुकी है. एक ओर सारे देश की पुलिस, सी.आर.पी. फौज की शक्ति, दूसरी ओर असम की जनता का मनोबल. क्या परिणाम निकलेगा इस विषम लड़ाई का? क्या इस मनोबल को ध्वस्त करने के लिए फूट फैलाने की कोशिश नहीं की जायेगी? राजनीतिक हथकंडेबाज क्या शांतप्रिय भोले-भाले जनों को आपस में लड़ाने से बाज आयेंगे?

चुनाव के दिन जितने नजदीक आते जा रहे थे, लोगों में सरगर्मी भी बढ़ती जाती थी. अनवर अली और डालिमी ने स्वयंसेवकों की टोलियां संगठित कर ली थीं. उस अंचल से कोई भी नामांकनपत्र दाखिल करने नहीं गया था. पर दूसरे अंचल के दो-तीन लोगों ने छिपकर पूरी गोपनीयता से किस तरह नामांकन-पत्र दाखिल किया, लोगों में विस्मय था. उनके नाम भी तो कोई नहीं जानता था. आज चुनाव के नाटक का आखिरी दिन था.

वह सोचने लगा, परदा गिरनेवाला है या उठनेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है? आगे कौन-सा दृश्य आयेगा, कौन जाने! अचानक दूर. . बहुत दूर क्षितिज सहसा लाल हो उठा. "आग. . ." पास खड़ा अनवर चिल्ला उठा.

तभी एक लड़का बेतहाशा दौड़ता हुआ आया. लोग उसके चारों ओर खड़े हो गये.

"अरे सीदाम!" अनवर ने पूछा, "क्या हुआ?"

सीदाम हांफता हुआ बोला, "आप लोग यहां क्या कर रहे हैं. . . उधर दो-तीन हजार विदेशियों के जत्थे ने गांवों पर हमला बोल दिया है. वे आग लगाते हुए लोगों की हत्या करते बढ़े आ रहे हैं! इस चुनाव ने उन्हें बल दे दिया है. वे असमिया लोगों को खत्म कर डालने पर उतारू हैं. . . यहां भी पहुंचने ही वाले हैं!"

अनवर ऊंची आवाज में बोला, "कोई भी डरे नहीं. सब अपनी रक्षा के लिए तैयार हो जायें. हमलावरों का मुकाबला हम मिलकर करें. हम दिखा देंगे, हम सब एक हैं, कोई हममें फूट नहीं डाल सकता."

पलभर में गांव के लोग अपने हाथों में दा, खंते, भाले आदि लेकर इकट्ठे हो गये.

अनवर बोला, "आप सब यहीं रहें. हमारा मुहल्ला आगे है, वे सब लोग हमलावरों का मुकाबला करेंगे, उनके रहते कोई इधर आकर हिंदू मुहल्ले पर हमला नहीं कर सकेगा."

मधुराम ने कहा, "लेकिन वे सशस्त्र हैं, हमारे पास कोई हथियार नहीं, पुलिस को खबर देनी चाहिए. मगर अभी कौन जायेगा? उधर पुल भी टूटा हुआ है."

"आप बिलकुल बेफिक्र रहें. मैं अपने मुहल्लेवालों को होशियार कर खुद पुलिस को खबर करने जा रहा हूं. सीदाम, डालिमी, तुम इधर के स्वयंसेवकों को हर स्थिति के मुकाबले के लिए तैयार रखो. मैं जल्द ही लौट रहा हूं."

शोर बढ़ता ही जा रहा था. कुछ ही देर बाद दूसरे मुहल्ले से चिल्लाहट और आग जलने का शोर गूंज उठा. कुछ लड़कों ने भागते हुए आकर खबर दी, विदेशी उस मुहल्ले के सिरे पर पहुंच कर आग लगा रहे हैं.

डालिमी बोल उठी, "उस मुहल्ले के हमारे भाइयों की मदद भी हमें करनी चाहिए. पता नहीं, वे कैसा जुल्म ढा दें. इस संकट का मुकाबला अगर हम मिलकर नहीं करते तो असम नहीं बचेगा. . . कोई नहीं बचेगा. कुछ लोग यहां रह जायें, कुछ लोग हमारे साथ चलें." कहकर हाथ में भाला लिए वह आगे बढ़ गयी.

मधुराम की छाती तेजी से धड़कने लगी, उस भयंकर खतरे में पड़ने से डालिमी को रोकना चाहते हुए भी वह रोक नहीं पाया. वह भी उधर चला जाये तो मुहल्ला बिलकुल अरक्षित हो जायेगा, सोचकर दिल थामे रुका रहा.

चड़-चड़. . . चड़ाख. . . चड़ाख! आग की प्रचंड आवाजें बढ़ती ही जा रही थीं, मकान, एक के बाद एक जलने लगे थे. अचानक बड़े जोर का धमाका हुआ. लोगों के तेजी से भाग-दौड़ की आवाजें गूंजने लगीं. वहां खड़े किसी ने कहा, "शायद हमलावर भाग रहे हैं."

■ व्यंग्यचित्र : चंदर

कुछ क्षण बाद ही पांच घायलों को उठाये लोग आ पहुंचे. कौन-कौन घायल हुए हैं? लोग उत्सुकता से चीखते हुए देखने लगे. . . डालिमी की हालत गंभीर थी, वह बेहोश थी.

लोगों ने बताया कि उस मुहल्लेवालों ने हमलावरों को समझाया, मना किया, मगर वे नहीं माने. मुहल्लेवालों ने अपने मुहल्ले से उन्हें राह नहीं दी. तब उन दुष्टों ने उस मुहल्ले को ही जलाना शुरू कर दिया. —तभी इधर से भाला लिए डालिमी सिंहनी-सी उन हमलावरों पर टूट पड़ी. पांच दुष्ट हमलावर मारे गये. तब वे भाग खड़े हुए. मूला की भांति पराक्रम दिखाकर डालिमी ने हमारा सिर ऊंचा उठा दिया.

मधुराम बिलख पड़ा. नीरदा बेहोश डालिमी से लगकर फूट-फूटकर रोने लगी. सबकी आंखों से आंसू बहने लगे.

उसी समय एक और घायल को उठाए कुछ लोग वहां पहुंचे. कौन?. . .अनवर! अनवर भी मारा गया. सब एक साथ चीख उठे. लाने वाले लोगों ने बताया, "अनवर से खबर पाकर पुलिस ने पहले तो बहाने बनाये कि वे चुनाव के कामों में लगे हैं. लेकिन काफी समझाने पर वे आने को तैयार हुए. पुलिस को खबर देकर लौटते हुए अनवर के साथ हमलावरों की मुठभेड़ हो गयी. अकेले पाकर उन सबने अनवर पर एक साथ हमला कर मार डाला. और. ."

तभी जीप के आने की आवाज आयी. लोग पुकार उठे, "पुलिस! पुलिस आ रही है."

"अब तो सब कुछ खत्म हो गया! अब पुलिस आकर क्या करेगी. डालिमी, अनवर शहीद हो गये, न जाने और कितने शहीद होंगे!" मधुराम सिसकता हुआ कह रहा था, "घर-बार जलानेवाली लपटें तो कुछ देर में हो सकता है शांत हो जायें, लेकिन जन-जन के मन में जो लपटें धधका दी गयी हैं, वे कैसे शांत होंगी? क्या पुलिस अब उसे शांत कर सकेगी?" □

● खारघुली, गुवाहाटी (असम)-781001.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धांत का संकट

• हरिशंकर परसाई

वे दे रहे थे. ये ले नहीं रहे थे.

वे खुशी से दे रहे थे. ये खुशी से इनकार कर रहे थे.

वे खुशी से और ज्यादा देना चाहते थे. ये खुशी से ज्यादा लेने से भी इनकार कर रहे थे.

और दोनों दुखी थे. खुशी से देने वाले भी दुखी और खुशी से नहीं लेने वाले भी दुखी. दोनों पक्षों के परस्पर प्रेम, विश्वास और आत्मीयता का धीरे-धीरे क्षरण हो रहा था. और इस खुशी से पैदा हुए दुख तथा अविश्वास का कारण बहुत आदर्श और पवित्र था.

उलटबांसी हो चुकी अब व्याख्या...

लड़की के पिता और मामा वर का टीका करने आये थे. शादी की बात शुरू होने से लेकर बरात विदा होने तक एक तरह का युद्ध होता है. इस युद्ध में लड़की वाले के सिपाही रुपये होते हैं. रणनीति उसकी हाथ जोड़ना और घिघियाना होती है. वह जानता है कि मुझे ही हारना है और समर्पण करना है, मगर वह कोशिश करता है कि मेरे कम से कम सिपाही मरें. लड़की के पिता और मामा परंपरागत शैली के व्यावहारिक आदमी थे. ज्यादा पढ़े-लिखे भी नहीं थे. हैसियत साधारण... अच्छी थी. जनरल स्टोर्स था. दो लड़के नौकरी भी करते थे, कुछ खेती थी.

वर के पिता की हैसियत अच्छी थी. वे बहुत सुसंस्कृत और प्रबुद्ध आदमी थे. कई समाज सेवी संस्थाओं में काम करते थे, तो उनसे यश और प्रतिष्ठा थी. वे आधुनिक विचारों के और सिद्धांतनिष्ठ आदमी माने जाते थे. आदर्शवादी थे मानव-संबंधों में.

वर के पिता ऐसे थे, तो विशेष रणनीति तय करने के लिए लड़की के पिता अपने एक पारिवारिक मित्र दीवानी वकील को भी साथ ले आये थे. टीके में दीवानी वकील काफी होता है. बरात पहुंचने पर फौजदारी वकील जरूरी होता है.

रणनीति यह तय हुई थी कि पहले वकील साहब वर के पिता को इशारा कर देंगे. फिर लड़की के पिता और मामा वकील की बतायी रणनीति के हिसाब से युद्धक्षेत्र में उतरेंगे.

सुबह करीब नौ बजे तीनों वर के घर पहुंचे. स्वागत-सत्कार हुआ, कुशल-क्षेम निपटा. वकील साहब तब तक वर के पिता से बौद्धिक स्तर पर जुड़ चुके थे. दोनों में बातचीत इस स्तर तक पहुंच चुकी थी कि भारत जो विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा-कोश से कर्ज लेता जा रहा है इसके नतीजे क्या होंगे. इस बीच वर के पिता के पांच लोकल फोन और एक बंबई का ट्रंक-कॉल आ चुका था. ट्रंक पर जो बात हुई, उसका मतलब था कि बंबई वाली पार्टी पच्चीस हजार का ड्राफ्ट भेज रही है. इससे लड़की के पिता और मामा आतंकित हुए.

लड़की के मामा ने वर के पिता से पूछा, "कबका मुहूर्त निकला है?"

वर के पिता ने कहा, "वैसे तो हमारा इस मुहूर्त वगैरह में विश्वास है नहीं. जिस क्षण अच्छा काम करो, वही शुभ मुहूर्त है. फिर भी आप लोगों के विश्वास का खयाल करके हमने पास ही रहने वाले एक पुरोहित से बात कर रखी है. उनका कहना है कि ग्यारह बजे से लेकर रात नौ बजे तक चार मुहूर्त हैं."

वकील ने अब रणनीति के हिसाब से अंग्रेजी बोलना उचित समझा, "दैट्स ओ.के. आई. टु डु नॉट बिलीव्ह इन दीज थिंग्ज. यट सर्टेन ट्रेडीशंस हैव टु बी फॉलोड. जस्ट ए मिनिट विद यू इन प्राइवेट." (एक मिनिट अकेले में बात करनी है...)

दोनों उठकर दूसरे कमरे में चले गये. वकील साहब ने कहा, "ये लोग पंद्रह हजार रुपये और चांदी के बर्तन लाये हैं, देने के लिए."

वर के पिता ने कहा, "देखिए, लेने वाले तो पहले ही लेन-देन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तय कर लेते हैं. मैंने तो बातचीत में **कोई मांग** कभी नहीं की. मैं सिद्धांत से **दहेज** का विरोधी हूं. कितने तो लेख **लिखता** हूं और कितने भाषण देता **हूं दहेज** के विरोध में. आप जानते होंगे. **मैं** एक पैसा भी नहीं लूंगा."

वकील साहब ने इस बात को सहज **ढंग** से नहीं लिया. बात को सहज ढंग **से नहीं** लेना उनके पेशे की आदत थी.

उन्होंने कांइयापन से कहा, "आपके **सिद्धांत** का मैं आदर करता हूं. मेरे **विचार** भी ऐसे ही हैं. हम सिद्धांतों की बातें करते हैं तो बहुत अच्छा है. मगर व्यवहार दूसरी चीज है."

वर के पिता ने कहा, "यानी सार्वजनिक रूप से किसी सिद्धांत की **घोषणा** करूं और व्यवहार में उससे **उलटा** करूं? माफ कीजिये, मैं वकील **नहीं** हूं."

वकील ने फौरन ठप्पा मारा, **"मगर** बिजनेसमैन तो हैं."

इस वाक्य से उनके आदर्शवादी **कलेजे** में एक तीर घुसा और छेदकर **निकल** गया. एक क्षण वे निष्प्रभ हो **गये.** बिजनेसमैन तो हैं. . . यानी मैं **सिद्धांत** के व आदर्श के दो खाते रखता **हूं. एक** सच्चा और निजी और दूसरा **इनकमटैक्स** वालों के लिए. बुरी जगह **मार** की थी वकील ने.

वे संभल गये, बोले, "साहब, बिजनेस**मैन** हूं, मगर दो खाते नहीं रखता."

दोनों बाहर आ गये.

वर के पिता ने लड़की के पिता से **कहा,** "देखिए, आपने मुझे ठीक समझा **नहीं.** मुझे रुपये नहीं चाहिए. चांदी **के बर्तन** भी नहीं चाहिए. चांदी के **बर्तनों** में गंवार रईस खाना खाते हैं. **मैं न** तो गंवार हूं और न रईस हूं. **तो** रुपये और बर्तन तो आप वापस ले **जाइये.** शुद्ध टीका कर दीजिए."

लड़की के पिता और मामा का मुंह **उतर** गया. वे समझ गये कि ये ज्यादा **चाहते** हैं. लड़की के बाप ने कहा, **"हम इस** योग्य नहीं हैं कि आपके यहां **संबंध** हो. यह तो ईश्वर की कृपा है **और** योगायोग है. अगर हमारी हैसियत **होती** तो आपकी सेवा में बहुत कुछ **पेश** करते. कौन पिता अपनी लड़की

> **लड़की वाले के सिपाही रुपये होते हैं. . . रणनीति उसकी हाथ जोड़ना और घिघियाना होती है. . .वह जानता है कि मुझे ही हारना है और समर्पण करना है. मगर कोशिश करता है कि कम से कम सिपाही मारे जायें. . .**

को अधिक से अधिक नहीं देना चाहता."

दीनता की रणनीति के हिसाब से इतना बहुत था.

लड़की के मामा ने दूसरी रणनीति चली, "देखिए, सिद्धांत बहुत उत्तम है. पर पुरखों से चली आ रही परंपराएं भी हैं. आगे चलकर लड़के-लड़की खुद इन परंपराओं को तोड़ेंगे तो यह उनकी जिम्मेदारी होगी. वे ठीक ही करेंगे. पर जब तक करने वाले हम हैं, तब तक तो इन परंपराओं को निभाना ही पड़ेगा. लोक-धर्म भी तो है. फिर हम स्वेच्छा से दे रहे हैं. आपको लेने में क्या एतराज है?"

वर के पिता ने कहा, "यह सब ठीक है. पर मेरा लड़का भी कुछ नहीं लेना चाहता. मैं स्वीकार नहीं करूंगा."

वकील साहब ने कहा, "तो ऐसा करें. हम लोग अभी तो होटल जाते हैं. भोजन वगैरह करके दोपहर में लौटते हैं. तब टीका हो जायेगा."

वे होटल पहुंचे. सलाह हुई. उन लोगों का मत था कि वर का पिता कांइयां आदमी है. घर आयी लक्ष्मी को कोई इस तरह दरवाजा बंद करता है. वह आदर्श के जरिये और वसूली करना चाहता है. ऐसा करें बीस हजार दे दें.

वकील साहब फौरन वर के पिता के पास पहुंचे. बोले, "वे लोग बीस हजार देने को तैयार हैं. अब आप मान जाइये."

वर के पिता को तैश आ गया. वे बोले, "आप समझते क्या हैं? मैं कोई लुटेरा हूं!"

वकील साहब ने कहा, "आप नाराज न हों. जैसा आप चाहेंगे वैसा ही होगा. वे जरा पुराने खयालों के आदमी हैं. मैं उन्हें समझाता हूं."

वकील साहब होटल लौटे. इस बीच लड़की के पिता और मामा दो-तीन परिचितों से मिल आये थे. दो ने कहा कि वर के पिता अच्छे आदमी हैं. एक ने शंका डाल दी थी. कहा था, 'पैसे के मामले में आदमी क्या कर बैठे, इसका ठिकाना नहीं. वे चलते पुर्जे हैं. मान लो. अभी न लें और शादी के मंडप में अड़ जायें और एक लाख मांगने लगें तो?

अब वे तीनों बड़ी चिंता में पड़े.

वकील ने कहा, "किसी दूसरी जगह बहुत पैसे लेकर तो इन्होंने रिश्ता तय नहीं कर लिया? हमें टालना चाहते हैं."

वधू के पिता ने कहा, "यह भी हो सकता है."

मामा ने कहा, "लेकिन वे टीका कराने को तो तैयार हैं."

वकील ने कहा, "ऐसा भी तो हो सकता है, कि जब टीका करने पहुंचें, तो वे कह दें कि आप लोगों के व्यवहार से लड़के का मन बदल गया है. वह शादी नहीं करना चाहता."

मामा ने कहा, "कहीं ऐसा तो नहीं है कि किसी दुष्ट ने लड़की के बारे में कुछ झूठ ही अंट-शंट कह दिया हो. अपना भी बुरा चाहने वाले हैं न बिरादरी में. विघ्न संतोषी कहां नहीं हैं?"

पिता ने कहा, "हो सकता है. पर अब करें क्या?"

वकील ने कहा, "इधर कुंआ है, उधर खाई है. अगर इनकी बात मानें तो वह डर है कि ऐन शादी के मंडप में ये न जाने क्या मांग बैठें. अगर टीका किये बिना लौट चलें तो बिरादरी और समाज में बदनामी होगी. लोग कहेंगे—ये टीका करने गये थे, मगर इन्हें लौटा दिया गया. जरूर लड़की में कोई कलंक है. मैं सोचता हूं कि और दो हजार बढ़ा दें. बाईस हजार भेंट करें. फिर भी वे आदर्शवाद और सिद्धांत बघारें, तो फिर या तो टीका कर दें या बिना किये लौट चलें. लड़की के भाग्य में जो बदा होगा, होगा."

पाठक समझ रहे होंगे कि इस वकील को जो केस मिलता होगा, वही हारता होगा. पर बात ऐसी नहीं थी.

पाठक यह भी सोचते होंगे कि इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच वर के पिता क्या सोच और कर रहे होंगे. वे भी तो उलझन में पड़ गये थे? उन्हें सलाह देने के लिए क्या कोई नहीं था? उस परिवार के सदस्यों में क्या प्रतिक्रिया थी? परिवार के सारे सदस्य जानते थे कि कुछ लिया नहीं जायेगा. परिवार के मुखिया को सब सही मानते थे. उनकी इच्छा के विपरीत कुछ हो नहीं सकता था. दूसरे, परिवार में लेन-देन की परंपरा थी नहीं. अभी तक देने की समस्या सामने नहीं आयी थी क्योंकि किसी लड़की की शादी अभी तक हुई नहीं थी. घर में दो लड़कियां शादी के लायक हो रही थीं. तो परिवार के समझदार सदस्य यह जरूर सोच रहे थे कि इन लड़कियों की शादी में क्या यह आदर्शवाद निभ सकेगा?

वर के पिता के एक घनिष्ठ मित्र इस बीच आ गये थे. वे लेखक थे और बहुत लोकप्रिय थे. वर के पिता ने पूरा हाल बताया. कहने लगे, "मुझे इस स्थिति की कल्पना ही नहीं थी."

मित्र ने कहा, "प्यारे, इस समय तुम उन लोगों की नजरों में बहुत बड़े पाखंडी और कुटिल आदमी हो—निर्लोभी, आदर्शवादी, सिद्धांतवादी नहीं. अपनी यह सामाजिक व्यवस्था कितनी कुत्सित हो गयी है कि इसमें बुरा करना आसान है, बल्कि अपेक्षित है. अच्छा करना अत्यंत दुष्कर है. बेईमानी करके जीना सहज है. ईमानदारी से जीने वाला छिपा हुआ अधिक चतुर बेईमान माना जाता है. कोई गुंजाइश नहीं बची व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता की. यह जो तुम्हारी स्थिति है, वह हास्यास्पद भी है और कारुणिक भी."

उन्होंने कहा, "तीन बज गये और वे अभी तक नहीं आये. अगर वे लौट गये तो मेरी बड़ी बदनामी होगी. बिरादरी और समाज में यही बात फैलेगी कि बड़ा सिद्धांतवादी बनता है, मगर लड़की वालों के सामने इतना मुंह फाड़ दिया कि बेचारे टीका किये बिना लौट गये. तुम्हें जानते हैं वे. तुम्हारे बड़े प्रशंसक हैं. वह वकील कह रहा था कि यहां आये हैं, तो तुम से मिलकर ही जायेंगे."

मित्र ने कहा, "वे आयेंगे फिर. शायद दो-चार हजार ज्यादा लेकर आयें. अब मैं तुम्हारा स्वभाव जानता हूं. तुम जल्दी तैश में आते हो. दहेज के नाम से लूट से नफरत है न! मगर बिना रुपये हाथ में रखे टीका करना वे अशुभ मानते हों, तो तुम एक सौ एक रुपये तो ले लोगे?"

उन्होंने कहा, "हां, 'टोकन' में इतने से रुपये लेने में मुझे कोई एतराज नहीं है."

वे लोग आये. बैठे. मित्र ने मेरा परिचय कराया और कहा, "अब थोड़ी देर आप लोग इनसे बातें करें. मैं जरूरी काम निपटाकर आता हूं."

थोड़ी देर उन लोगों ने लेखक की तारीफ की. और सच्चा लिखने वाला कहा. लेखक ने सोचा कि अगर पहले ही वार से इनके मर्म को नहीं बेधा तो ये आगे मानेंगे नहीं.

उसने कहा, "क्यों साहब, अगर कोई जवान स्त्री नदी में डूब रही है और कोई आदमी कूदकर बचाने लगे तो उस आदमी के बारे में आप क्या सोचेंगे?"

उन्होंने कहा, "इसमें पूछने की क्या बात है? हम उसकी दया और साहस की प्रशंसा करेंगे?"

लेखक ने कहा, "क्या आप यह नहीं सोचेंगे कि वह आदमी उसे इसलिए बचा रहा है कि बाद में उससे बलात्कार करेगा!"

वे बोले, "ऐसा तो कोई पागल आदमी ही सोचेगा."

"सुबह से आप ऐसा ही सोच रहे हैं."

वे सन्नाटे में आ गये. वकील ने कहा, "आपका मतलब नहीं समझे."

लेखक ने कहा, "जो आदमी लड़के की शादी में एक पैसा भी आपसे नहीं ले रहा है वह बहुत अच्छा आदमी है. और आप लोग उसे झूठा, पाखंडी, कुटिल और बाद में तंग करने वाला मान रहे हैं. आप जानते हैं लोग दहेज में लड़की वाले का घर लूट लेते हैं. यही नहीं दहेज के लोभ में बहुएं जला रहे हैं. और एक यह आदमी है. आप सुबह से उसे उसी की नजरों में गिरा रहे हैं."

वे लोग परेशान हो गये. बड़ी मुश्किल से लड़की के मामा ने कहा, "हमारा तो यही आग्रह है कि परंपरा के अनुसार हम जो तुच्छ भेंट दे रहे हैं, उसे स्वीकार लें."

लेखक ने कहा, "इस परंपरा को वे तोड़ना चाहते हैं. आज आपके मन में यह शक है कि ये शादी के ऐन मौके पर बहुत मांगेंगे. . . वही बात कि स्त्री को डूबने से बचाकर उससे बलात्कार करेंगे. देखिए मैं इस परिवार का सदस्य ही हूं. लड़का मेरा भतीजा है. इससे बड़े दो लड़कों की शादी में भी कोई दहेज नहीं लिया."

लड़की के बाप ने कहा, "यह हमें नहीं बताया गया."

लेखक ने कहा, "बताकर क्या वे उन बहुओं के परिवारों को आपकी नजरों में गिराते? आप सोचते, वे किसी भुक्खड़ परिवार की होंगी. या इनके लड़के घटिया होंगे. पर वे इज्जतदार मध्यम वर्गीय परिवार की अच्छी लड़कियां हैं. वे कुछ नहीं लायी हैं. आपकी लड़की काफी धन लेकर तीसरी बहू बनकर आयेगी. अब आपकी लड़की में होगी ठसक और जिठानियां चिढ़ेंगी. वे अपने को हीन समझेंगी. तब मचेगा घर में कलह, जिसमें आपकी लड़की की दुर्गति हो जायेगी. क्या आप पैसा देकर अपनी लड़की की दुर्गति कराना चाहते हैं!"

"लड़की के बाप ने कहा, "आप ठीक कहते हैं. यह बात हमारी समझ में पहले नहीं आयी थी."

लेखक ने मजाक किया, "वह इसलिए हुआ कि वकील साहब को आपने फीस नहीं दी होगी."

वकील साहब झेंपे और फिर हंसने लगे. मामा ने कहा, "अगर दस्तूर के रूप में नाममात्र को कुछ. . ."

लेखक ने कहा, "वे एक सौ एक रुपये ले लेंगे."

वे खुश हुए. इतने में वर के पिता आ गये. लेखक ने कहा "अब क्यों देर करते हो? पंडितजी को बुलाकर टीका करा लो. अब बिलंब केहि काज, बंधै सिंधु उतरै कटक?" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिलसिले खत्म नहीं होते

• कैलाश नारद

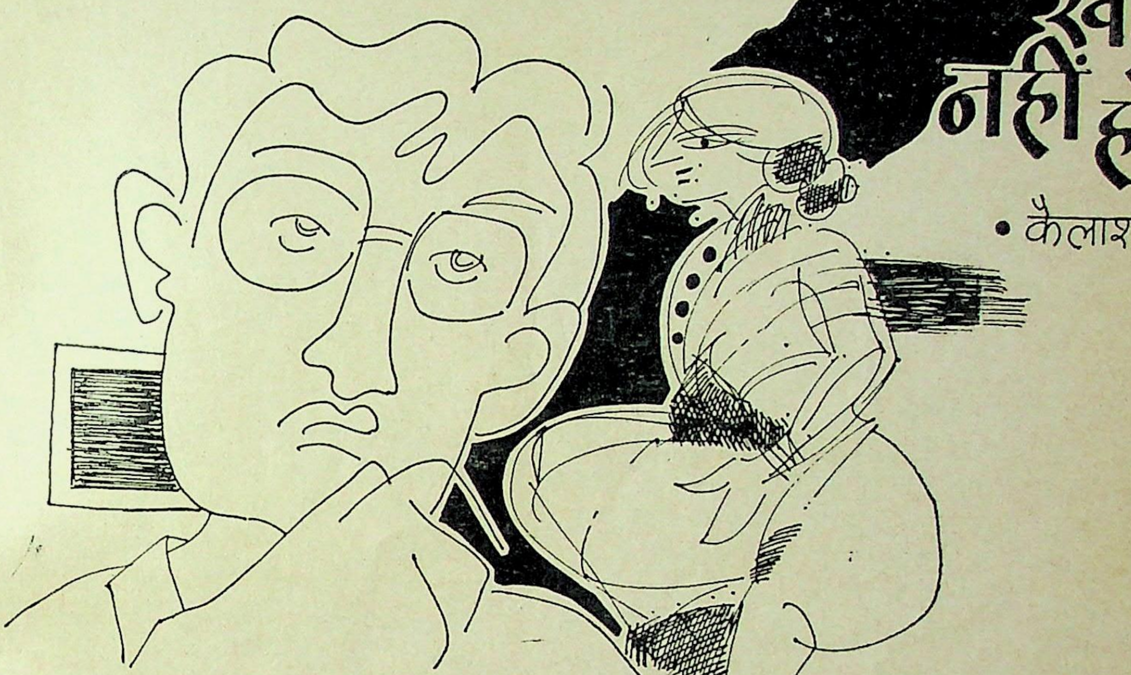

खिड़की का परदा, एक अरसा हुआ, फटकर चिथड़े-चिथड़े हो गया था और तब से वह हिस्सा खाली-खाली था. उसकी नंगी सलाखों पर अक्सर चिड़ियां बैठा करती थीं, लेकिन इस अपराह्न सन्नाटा था. सिर्फ हवा थी, जो मार्च की इन सुनसान दुपहरियों में खूब उज्ज्वल और पारदर्शी प्रतीत होती थी.

बाजू के कमरे में बहन के बच्चे लड्डू-पानी खेल रहे थे. उनकी चीखती हुई बारीक आवाजें वह बखूबी सुन पा रहा था. एक-दो बार उसके मन में आया था कि उनसे कह दे कि वे शोर न मचायें, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने करवट बदल ली थी. वह एक चमकीली दोपहर थी.

बहन कालिज गयी थी और मां अपने कमरे में थीं. सिर्फ बच्चों का स्वर सन्नाटे को तोड़ता था. उन दोपहरों में अक्सर वीराना रहता. बिलकुल वीराना भी नहीं, कटी-फटी आहटें डगमगाती परछाइयों जैसी तिरा करतीं. कमरे से लगे बरामदों में अखबार के फटे-चिथे टुकड़े खड़खड़ाते थे या धूल, जो हवा में करकराती और झोंका आने पर अक्सर खिड़कियों के रास्ते भीतर बिखर जाती. खामोशी के बावजूद हल्का-हल्का शोर, दबते पत्तों की चरमराहट का, उठता-गिरता रहता. रास्ते सुनसान रहते, सिर्फ दूकानों या रेस्तराओं में लोगों की भीड़ रहती. होमसाइंस कॉलेज, एंपायर, डिलाइट, . . .निरुद्देश्य, उसकी इच्छा जहां होती, मुड़ जाता. कई बार उसके मन में आया था कि वह वापस अपने शहर चला जायेगा, जहां उसकी नौकरी थी. व्यर्थ ही उसने इतनी लंबी छुट्टी ली थी, लेकिन बीस रोज हो गये थे, ये दस दिन भी बीत जायेंगे. शहर के बीचों बीच में काफी बड़ा स्टेडियम बन गया था, जहां फरवरी के आखिरी दिनों में उसने फुटबाल के मैच देखे थे. काफीहाउस भी था, जहां अकेले बैठे, शीशों के दरवाजों के पार देखते हुए उसने घंटों गुजार दिये थे या क्वीन्स रोड की चौड़ी सूनी सड़कें थीं, जिन पर सूखे पत्ते बिखरे रहते थे. पतझड़ में नंगे हुए दरख्त और उनकी सीधी-सूखी टहनियां, जो उजले-चमकीले आकाश के प्रच्छदपट में मकड़जाल जैसी नजर आती थीं. आते समय उसने सोचा था कि वह पेंटिंग की शुरुआत नये सिरे से करेगा, लेकिन दिन बीतते जाते थे. अपने चेहरे को अलग-अलग रंगों में दुहकाते हुए, अक्सर उसे महसूस होता था मानो किसी जलते मैदान में ले जाकर उसे अकेला खड़ा कर दिया गया हो और दूर-दूर तक सन्नाटा फैला हो. कमरे में रंग और ब्रश वैसे ही बिखरे रहते और दोपहरें बीत जातीं.

एक रोज अचानक उसकी मुलाकात माया से हो गयी थी. वह दोपहर का शो देखकर निकला था और कॉरीडोर से उतरकर दूर चला आया था, तिकोने आईलैंड की तरफ, जहां दो-एक बेंचें रखी थीं. वहां सन्नाटा था और शाम की धूप. सिर्फ दो-तीन व्यक्ति खड़े सिगरेट पी रहे थे. तभी उसने माया को देखा. उसके पांव अनायास ठिठक गये.

वह माया ही थी—सीढ़ियों पर खड़ी हुई. कॉरीडोर सुनसान थे. दीवार में चिपके पोस्टर्स और तस्वीरों की आकृतियां आधे-छिपे उजाले में उघड़ी-सी नजर आती थीं. एक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूटे हुए सिलसिले क्या दुबारा जुड़ते हैं? शायद हां, शायद नहीं, पर वे खत्म होकर भी कहां खत्म हो पाते हैं? जब भी उनसे सामना होता है तो क्या हम उन्हें फिर से जोड़ने नहीं लग जाते? मानवीय संबंधों के अंतराल का काव्यात्मक आख्यान––

दो क्षण तक वह असमंजस से उसकी तरफ देखता रहा. फिर उसने अपना चेहरा दूसरी तरफ कर लिया, लेकिन माया ने उसे देख लिया था. सीढ़ियां उतरकर वह उसके पास चली आयी थी, "हलो संजीव," उसने कहा, "जबलपुर कब आये?"

उसे उम्मीद नहीं थी कि माया से इस तरह मुलाकात होगी. काफी दिनों पहले जब वह दार्जिलिंग में था, बहन ने उसे लिखा था कि माया ने नौकरी छोड़ दी है और फैलोशिप लेकर वह दिल्ली चली गयी है. पत्र के पीछे फैली हुई असीम दूरियों के धूमिल छोर पर तब उसे अपने भीतर एक रूखी-सी रिक्तता का आभास हुआ था. माया को एकाएक देखकर वह असमंजस में पड़ गया. फिर भी, वह हंसने लगा. कहा, "जबलपुर आये बीस रोज हुए, मगर तुम तो दिल्ली में थीं?"

"हां थी. . .तुम्हें कैसे पता लगा?"

"सुजाता ने चिट्ठी में लिखा था," उसने बहन का नाम लिया, "तुम्हारी थीसिस का क्या हुआ?" उसने पूछा.

"पूरी नहीं हो पायी. . .अच्छा, तुम कहां जा रहे हो?".

माया का सवाल सुनकर वह अचकचा गया. तीन साल बाद भी माया उसे पहचान लेगी, जानकर उसे हल्का-सा अचरज हुआ था. बहन के साथ सिर्फ एक-दो बार उससे मुलाकात हुई थी, एक बार कॉलेज के स्टाफरूम में, जहां बहन ने उन दोनों का परिचय कराया था और दूसरी बार बंटी के 'बर्थडे' पर जब बहन ने 'कैनबरी' में अपने दोस्तों को पार्टी दी थी. पूरे समय तक वह अपने-आप सिमटा बैठा रहा था. सिर्फ लड़कियां बातचीत करती रही थीं और जवाब में वह 'हां', 'हूं' करता रहा था.

"ब्रिस्टो," उसने एसप्रेसो बार का नाम लिया, जहां बीयर भी मिलती थी, "अगर एतराज न हो तो साथ-साथ काफी पियें."

'एंपायर' के कॉरीडोर्स भरने लगे. पहला शो शुरू होने में देर नहीं थी. सूखे पत्ते, जो दिन भर उड़ते रहे थे, अब खामोश हो गये थे. जब कभी हवा चलती तो वे खड़खड़ाते और फिर खामोश हो जाते. सामने 'करज्ज' की दिशा पर टंगा हुआ क्रास था, जिसके दोनों बाजुओं पर आखिरी धूप म्लान पड़ते दिन की परछाइयों में चमक जाती थी.

"कॉलेज में क्या तुम अब भी पढ़ाती हो?" सड़क पर चलते हुए उसने पूछा.

माया ने उसकी तरफ देखा. उसकी आंखों में विस्मय था, "तुमने ऐसा क्यों सोचा?" उसने कहा. वह लज्जित-सा हो गया. "यूं ही," वह बोला, "दिल्ली जाने से पहले तुम सुजाता के साथ भी थीं–सेंट एलायसियस में."

उसने तनिक उद्यत भाव से सिर हिला दिया, "दिल्ली जाने से पहले मैंने नौकरी छोड़ दी थी. . .और अब," उसका स्वर तनिक डगमगाया, "अब उसका कोई सवाल नहीं."

रेस्तरां के एक खामोश कोने में जाकर वे बैठ गये. वेटर आकर मेनू कार्ड रख गया. उनके दरमियान एक खामोशी खिंच आयी. 'ब्रिस्टो' के उस अंधेरे कोने में सिवाय उन दोनों के, कोई और नहीं था. शीशे के दरवाजे के दूसरी ओर कैट की आहटें थीं, जिन्हें तुम देख नहीं सकते, मगर जो सैलाब की मानिंद उठती और गिरती हैं और दरवाजों के इस ओर आते-आते नीरव हो जाती हैं. कितना सन्नाटा है, उसने सोचा. रेस्तरां खाली था, सिर्फ दो-एक लोग हाल में बैठे हुए थे, काफी पीते हुए या चुपचाप. काउंटर पर पैगोडा की शक्ल का एक टेबल-लैंप जल रहा था, जिसकी रोशनी आसपास की दीवारों पर सिमट आयी थी.

"तुमने सोचा था, मैं दिल्ली में ही होऊंगी."

"हां, ऐसा लगा था."

"लेकिन मैं वापस आ गयी–तीन महीने में ही. एक बार सोचा था, थीसिस पूरी कर लूं, लेकिन. . ." वह हंसने लगी, "टूटे हुए सिलसिले भला दुबारा जुड़ते हैं.?"

बहन ने एक रोज उससे माया के बारे में पूछा था. उन दिनों वह जबलपुर में ही था. खाने की मेज पर तब उस दिन सुजाता ने माया का जिक्र छेड़ा था और जानना चाहा था कि वह उसे कैसी लगती है. उसकी दिलचस्पी भी पेंटिंग की तरफ है. माया के बारे में बतलाती बहन का चेहरा और लहजा उसे अभी तक याद है––टूटे-से वाक्य, चेहरे पर घिर आया संकोच––बावजूद शब्दों की अस्तव्यस्तता के, उसे बहन की बातों के मूल सूत्र को पकड़ने में कठिनाई नहीं हुई थी, "तुम कविताएं लिखते हो, ड्रामों का भी शौक है. . .टैल मि, हाउ इज शि. . ."

शीशे का दरवाजा खुला और लड़कों का एक झुंड भीतर घुस आया. लंबे, छरहरे बदन, तंग मोहरी की पतलूनें. डांसिंग-फ्लोर के पीछे रखी कुर्सियों पर जाकर वे बैठ गये. उनमें से एक लड़का उठा और काउंटर पर जाकर कुछ कह आया. मैनेजर किंचित नीचे झुका, हल्की-सी आवाज हुई और मद्धिम स्वरों में रेकार्ड-प्लेयर पर कोई पुरानी-सी धुन बजने लगी.

टूटे हुए सिलसिले. उसने माया की तरफ देखना चाहा. वह कॉफी सिप कर रही थी. उसने अपना प्याला मेज पर रख कर कहा, "क्या सुजाता ने तुमसे मेरे बारे में कुछ कहा था."

"तुम्हारे बारे में. . .नहीं तो."

मुझे यह नहीं कहना चाहिए था, उसने सोचा. जब मैं यहां था, तब मैंने कई बार तुम्हारे करीब आने की चेष्टा की थी. . . यह गलत है. सच, बहुत गलत है. टूटे हुए सिलसिलों की याद मुझे सचमुच ही नहीं दिलानी चाहिए थी, माया, सिलसिले दरअसल. . .उसने माया की आंखों की तरफ देखा, जो नीरव-सी दूसरे कोने के धुंधलके में जाकर खो गयी थीं. सिलसिले, उसने सोचा, सवालों की मानिंद होते हैं. . .जस्ट लाइक ब्रेकेट्स. . .तुम उन्हें एक के बाद एक खोलते जाते हो. . . और आखिर में कुछ भी नहीं. वह कॉफी का घूंट ले रहा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माया चुप थी. सिर्फ उसकी थकी, टूटी सांसों की आहट भर सुनाई दे जाती.

अनाम-अनजान लहमों में अजनबी लगाव की अनुभूति. आंखों के सामने न जाने क्या तो धुंधला-सा फैल जाता है. बहन ने जब तुम्हारे बारे में बतलाया था, तब भी नहीं, लेकिन दार्जिलिंग की सुनसान, अकेली दोपहरियों में अक्सर महसूस किया था कि कुछ अपरिहार्य होता है, जिससे चाहकर भी मुक्त नहीं हुआ जा सकता. कहा जाता है कि वह मुक्ति देता है, लेकिन कहां, वह तो बांधता है. . . अपने-आप में एक शब्दहीन-सा आकर्षण छिपाये, जो अपनी नीरव उंगलियों से अंधेरे को टटोलते हुए हर चेहरे, हर निगाह को टटोलता है.

रेस्तरां के बाहर नीम के दरख्त से पीली पत्तियां एक-एक कर गिरती जा रही थीं. डूबती सांझ के धुंधलके में शीशे के बाहर दीखता कैंट का प्रोफाइल एक म्लान तस्वीर की मानिंद नजर आ रहा था.

"तुम्हें इंदौर की याद आती है. तुम वहीं की हो न?"

"हां," उसने सिर हिलाया," इन गर्मियों में वहां जाने का इरादा है. . .तुम?"

"मैं?" उसने माया की तरफ देखा.

"हां, तुम भी चलो. . .मालवा तुमने देखा कहां है?"

मालवा. उसे याद आया, एम. ए. करने के बाद उसने वहां की रियासतों पर रिसर्च करने का इरादा किया था. उसे लगा, उस तरफ जैसे वह कभी जा नहीं पायेगा. चाय-बागानों में ही जैसे उसकी पूरी जिंदगी बीत जायेगी. मार्च के इन सूखे, रीते दिनों में दार्जिलिंग की याद रह-रहकर उसे बेचैन बना देती थी. रात को भी अक्सर वह देर तक पहाड़ की ढलान पर बिखरी चाय की क्यारियों के बारे में सोचा करता था.

"तुमने चाय-बागान देखे है माया?"

"तस्वीरों में. . .बड़े प्यारे लगते हैं."

"तस्वीरों की बात अलग है. . .तुम एक बार वहां जरूर चलो. . .जब से तुम दिल्ली से आयी हो. . ."

लेकिन उसका वाक्य अधूरा ही टूट गया—रेकार्ड-प्लेयर की आवाज किसी ने तेज कर दी और गुंथते-टूटते सुरों की अबाध धारा उनके करीब बह आयी थी. स्थिर दृष्टि से वह बैंड स्टैंड की तरफ देख रही थी, जहां लड़कों का झुंड रेकार्ड की ट्यून पर ट्विस्ट कर रहा था. मेज पर एक बोझिल-सा सन्नाटा घिर आया था—आहटों के बावजूद. छत पर लगे बल्ब के धीमे आलोक में मेज पर पसरी चम्मचें चमकीं.

हाल झरने लगा. काउंटर पर बैठे मैनेजर ने उड़ती हुई निगाहों से भीतर की तरफ देखा. आवाज रह-रहकर उठती-गिरती थी—तेज धारदार शमशीर की मानिंद, मानो उसकी कौंध आलोक में चमकती हो और अंधेरे में छिप जाती हो.

"तुमने कुछ कहा?"

"हां, दार्जिलिंग के चाय-बगान. . . .तुम उन्हें देखोगी?"

माया की आंखें सामने रखे प्याले पर ठहर गयीं, जिसमें अवशिष्ट काफी चमक रही थी, "नो, आई डोंट गो. . ." उसने कहा और माथे पर झूल आयी लट को उंगलियों से पीछे कर लिया.

वह हतप्रभ-सा हो आया, "क्यों, चाय-बागान तो तुम्हें आकर्षक लगते हैं?" उसने कहा.

"सिर्फ तस्वीरों में, "उसने कहा, "आकर्षक और लगाव में फर्क है." वह हंसने लगी, "इतना भी नहीं जानते क्या!"

माया की ओर वह स्थिर दृष्टि से देखता रहा. गोल, खूब उजला चेहरा, सूनी मांग, सूना चेहरा और उदास, निष्प्रभ-सी आंखें, "तुम खुद महसूस करो संजीव," माया ने कहा, "वह जो बांधता है, सब व्यर्थ है, प्रेम भी. न तो वह चित्त को मुक्त करता है और न ही जीवन को पूर्ण करता है. . . हमें उसके बारे में भ्रम हो गया है."

"मैंने उसका जिक्र ही कहां किया?" वह अचकचा गया, "हां, तुमने नहीं किया," उसने कहा, "लेकिन क्या जिक्र नहीं करते?"

वह अनिश्चित भाव से माया की तरफ देखता रहा. रेकार्ड की आवाज, आंखों में एक अबूझ-सा अवसाद था, जो उस उम्र की लड़कियों में होता है, जिन्होंने कभी प्यार नहीं किया हो. . . तुम उन्हें जानते हो, उन आखों को भी, रीती और खाली. . .लेकिन वह उन फासलों से गुजर चुकी थी. बाहर मार्च की गहराती सांझ थी—चौकोर और अवसन्न मेज के पास से आकाश का हिस्सा दीखता था, जो शीशे के टूटे हुए टुकड़े की भांति नजर आता था. सड़क पर पतझड़ के पत्ते झुंडों में और इक्का-दुक्का बिखर गये थे. हवा चलती तो वे उड़ते, लेकिन शीशे के इस पार से देखने पर लगता था मानो वे हिल रहे हों—हवा में हिल रहे हों—स्याह लहरों की मानिंद.

"चलें." माया ने माथे पर बिखर आये बालों को दुबारा समेटा. वह उठकर खड़ा हो गया.

बाहर निकलकर वे फुटपाथ पर चले आये. सड़क पर आहटें थीं और बीतती मार्च का उजला आकाश, जो अब धुले हुए शीशे की भांति नजर आता था—टुकड़े जैसा नहीं, भीतर से महज भ्रम हुआ था. इमारतों की दीवारों पर अवशिष्ट रोशनी चमकती थी. सामने से गुजरते एक रिक्शे को रोककर माया उसमें बैठ गयी.

"तुम्हें देर हो गयी." उसने कहा.

"नहीं, ठीक है." माया ने कहा. उसकी आंख में एक आंसू डबडबा आया था और उसने उसे देख लिया था.

कुछ देर तक वह दूर जाते हुए रिक्शे की तरफ देखता रहा, मानो किसी अजनबी चीज को पहचानने की कोशिश कर रहा हो. फिर वापस लौटकर वह रेस्तरां में घुस गया, दुबारा बैंड शुरू हो रहा था और लोगों ने अपनी कुर्सियां बैंड-स्टैंड की तरफ खिसका ली थीं.

"वन आइस्ड बियर—मग में." बैरे को देखकर उसने कहा और उंगलियों से मेज बजाने लगा. . . चुप और प्रतीक्षा-रत. उसे खुशी हुई कि मार्च के चंद रोज और शेष हैं. □

● हुकुमचंद नारद रोड, तिलकभूमि, जबलपुर (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▫ नरेंद्र मौर्य

प्रस्थान

मैं बड़े उत्साह के साथ संधु से मिलने उसके ऑफिस पहुंचा था. किंतु उस ढीठ कर्मचारी ने मेरी साफ-सुथरी सूरत और साहब के मित्र होने के आत्मविश्वास से प्रभावित हुए बगैर एक पर्ची बढ़ा दी, जिस पर मुझे अपना नाम और साहब से काम का ब्यौरा देना था.

बहरहाल, पर्ची जाने और प्यून के वापस आने के बीच मैं यह अपेक्षा करता रहा कि संधु स्वयं उठकर मुझे लेने आयेगा, किंतु जब तीन-चार मिनट तक वह नहीं आया तो दिमाग में खयाल आया कि बेचारा कस्टम में है. संभवत: कोई बहुत महत्वपूर्ण काम निपटा रहा हो.

प्यून काफी देर बाद बाहर आया. अभी तक भी उसके चेहरे पर साहब के आत्मीय को दिया जानेवाला सम्मान नहीं था, बल्कि एक हिकारत थी. उसने मुझे अपने पीछे-पीछे आने का इशारा किया. दो-तीन कमरे पार करने के बाद हम संधु के चेंबर में पहुंचे. वह व्यापारियों से बातचीत में मशगूल था. उसने अपनी बातचीत का सिलसिला तोड़े बगैर मुझे दीवार के सहारे जमे सोफे पर बैठने का इशारा किया. मैं कमरे की गैरजरूरी साज-सज्जा को ठगा-सा देखता रहा. संधु जैसे और इकहरे व्यक्तित्व की जो छवि मेरे दिमाग में थी, उसके साथ कमरे के फालतूपन का तारतम्य ही नहीं जम रहा था. दीवार के सहारे एक बड़ा-सा-आइना लगा था, जिसमें संधु बरामदे में आने-जानेवालों को अपनी चेयर पर बैठे-बैठे ही देख सकता था. दीवार पर भव्य पोर्ट्रेट लगे थे. फर्श पर शानदार कालीन पड़ा था और कोने में आदमकद पत्थर का नग्न युगल रखा था. पेंटिंग के बाजू में लक्ष्मीजी की तस्वीर थी, जिसके सामने अगरबत्ती जल रही थी.

मेरी ओर देखकर संधु थोड़ा तनकर बैठ गया. उसने टाई की नॉट ठीक कर ली. टेबल पर सख्ती से हाथ रख देने से उसके कोट की क्रीज लाइन गड़बड़ा गयी थी. उसने संजीदगी से क्रीज लाइन ठीक की और दाल-बाफले की चर्चा की इति कर सामने पड़ी फाइल में मुंह गड़ा लिया. व्यापारी समझदार शैली में झुककर नमस्कार करते हुए चले गये. वह फाइल में मुंह गाड़े ही अपने सिर से टिके हुए हाथ की तर्जनी को हिलाकर उनके अभिवादन का प्रतिउत्तर देता रहा. उनके जाने के बाद मैं कोने के सोफे से उठकर संधु के सामने वाली चेयर पर आकर जम गया. मैंने सहज औपचारिकतावश पूछा, "और दादा, कैसे चल रहा है."

यूं संधु मुझसे उम्र में छह-सात वर्ष छोटा है, किंतु संधु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कस्टम में जाने के बाद उसके छोटे भाई मन्नू से भी मित्रवत् संबंध हो गये थे और इसीलिए मन्नू की तर्ज पर हम भी संधु को दादा कहकर संबोधित करने लगे थे. उसने फाइल से बिना नजर उठाये ही कहा, "यार, यहां बहुत लफड़े हैं, आजकल सांस लेने की फुरसत नहीं है. तुम अभी उसी कालेज में मास्टरी कर रहे हो या कहीं कुछ और?"

यह सूचना मैं संधु को पंद्रह दिन पहले भी दे चुका हूं कि मैं अभी तक उसी कालेज में हूं. समझ में नहीं आता, यह बात वह बार-बार क्यों भूल जाता है? मास्टरी शब्द को वह जिस तरह चबाकर बोल रहा था, उसमें मेरे व्यवसाय के प्रति विष्तृणा का भाव था.

उसने फाइल से मुंह उठाकर देखा, "आपकी बात और है, वर्ष में चार-पांच महीने छुट्टी और काम के दिन भी कौन-सा काम होता है? हमें तो चौबीस घंटे हम्माली करनी पड़ती है. तुम तो जानते हो, पहले बिना कुछ गंभीर पढ़े मुझे नींद ही नहीं आती थी, किंतु अब तो सोते-जागते जोड़-घटाना चलता रहता है. यहां फंसने के बाद एक भी नयी कहानी नहीं लिख पाया."

उसके चेहरे पर विरक्ति वाला भाव आ गया था. लगभग इसी तरह का भाव उसके चेहरे पर बेकारी के दिनों में भी रहता था. मुझे यह भी महसूस हुआ कि बेचारा इस पद पर किसी संवैधानिक अड़चन या गुंडों के विशेष घड़े के डर से अपनी तमाम अभिरुचियों की हत्या कर

बहुत मेधावी और संघर्षशील हमारे तमाम सिद्धार्थ आज कस्टम के अधिकारी बन गये हैं और अपना वर्ग बदल कर भ्रष्टाचार की नदी में डुबकी लगा रहे हैं. क्या उन्हें रोका नहीं जा सकता? अपने बीच से उभरे भ्रष्टाचारियों के खिलाफ जेहाद बोलती कहानी--

अनिच्छा से बैठा है. इसी बीच उसने टेबल से सटी तीन-चार बटनें एक साथ दबा दीं. तीन-चार प्यून, दो-तीन बाबू एक साथ दोनों बरामदों से भागते हुए आये. मुझे बीच में ही छोड़कर उसने आगंतुक व्यक्तियों को डपटते हुए कहा, "दो सौ तीन नंबर की फाइल ले आओ." सारे बाबू जिस तेजी से आये, उसी तेजी से अपेक्षित फाइल लेने चले गये. मुझे समझ नहीं आया कि एक फाइल को बुलाने के लिए इतने सारे व्यक्तियों को बुलवाने की क्या आवश्यकता थी? बहरहाल, यह कार्यक्रम छब्बीस जनवरी पर सेना के हवाबाजों द्वारा दिखाये गये प्रदर्शन जैसा था. उसका चेहरा इस प्रदर्शन के बाद दप-दप कर रहा था. मैंने खुशामदी मुस्कान चेहरे पर बिछाते हुए कहा, "मैंने अपनी योजना आपको भेजी थी. उसके लिए कुछ लोन आदि के सिलसिले में गुप्ताजी से कह देते तो बड़ी कृपा होती." वाक्य के अंतिम हिस्से तक मैं आवश्यकता से अधिक तरल हो गया था, किंतु वह मेरी स्थिति अथवा आवश्यकता को महसूस करता, इसके पहले उसके बाबू फाइल लेकर आ गये. वह फाइल को गौर से देखे बगैर ही उसके कंपलीट न होने पर गुर्राया.

अब तक यह उजागर हो गया था कि वह बाबू पर बेवजह बिगड़ रहा है. दरअसल सहज ढंग से दाल बाफले पर चर्चा करता हुआ व्यक्ति किस्त-दर-किस्त गुरगुराते हुए दहाड़ने लग जाये तो अजीब-सा लगना स्वाभाविक था. मैं अपने भीतर के कसैलेपन को छिपा नहीं पाया और एकाएक खड़ा हो गया, "कृपया मुझे तत्काल जाना है. पहले आप मुझे कुछ मिनट दे दें. मैं गुप्ताजी के संदर्भ में चर्चा करना चाहता हूं." गंभीर मुद्रा में उसने कहा, "अच्छा, अभी पठानकोट से जाना है? मैं तो समझ रहा था, अभी कुछ दिन रुकोगे." मैंने स्थिति थोड़ी सामान्य करते हुए कहा, "कुछ जरूरी काम थे. सचमुच मुझे जल्दी जाना है."

"अच्छा, फिर कभी आना, तुम्हारा काम हो जायेगा." उसने फिर फाइल में मुंह गड़ा लिया.

कालेज में संधु से मैं दो वर्ष सीनियर था. मैं संधु के पड़ोस में ही एक बुढ़िया के मकान में रहता था. बुढ़िया नितांत एकाकी थी और हमारी गोष्ठी-भीड़, हल्ले-तमाशे पर आम मकान मालिकाना रवैया से उसका रवैया भिन्न होता था. वह हमारी बातों को बड़े मनोयोग से सुनती थी. भारतीय फिल्मों में दिखाये जाने वाली भली मकान मालिकन की तर्ज पर वह जब तब हमारे लिए कुछ खाने-पीने की व्यवस्था भी करती रहती थी.

संधु और मेरी साहित्यिक दिलचस्पी लगभग समान थी. हम लोग अपनी ताजा पढ़ी पुस्तकों पर चर्चा करते, बहस भी होती. इन बहसों के दोनों पक्षों पर अक्सर संधु ही बोलता, मैं केवल उससे सहमत होता. जब वह केवल बी. एस-सी. द्वितीय वर्ष का छात्र था, उसकी रचनाएं प्रतिष्ठित, पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी थीं. स्थानीय गोष्ठियों में वह कविता पाठ भी करता था. अपनी प्रारंभिक रचनाएं भी मैंने संधु को ही सुनायी थीं. संधु मुझे उपयोगी परामर्श एवं सहायता भी देता था. मसलन, कुछ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के पते तथा पत्रिका के ट्रेंड के आधार पर रचनाओं का चयन उसने मुझे बताया. भाषा की शुद्धता के संदर्भ में भी मैंने उससे काफी कुछ सीखा.

महाविद्यालय में संधु, परीक्षा परिणामों की दृष्टि से रेखांकित नाम था ही, किंतु वक्ता के रूप में भी हमारे यहां का एक ऐसा अकेला नाम था, जिसे निर्विवाद कहा जा सकता हो. उसके तर्क अचूक हुआ करते थे. गोष्ठी-सभाओं में उसे किसी भी विषय पर सुनना सुखद ही था. महाविद्यालय के मेले-जलसे ही नहीं, अन्य संस्थाओं में भी उसे सादर बुलाया जाता था. संधु के पिता रेलवे में क्लर्क हैं. वे सामान्य से अधिक स्वस्थ और स्वभाव से गंभीर व्यक्ति थे. हमेशा सात्विक ब्राह्मणत्व से लकदक. ऑफिस में वे एक अच्छे सहयोगी, हंसोड़ और मेहनती व्यक्ति के रूप में जाने जाते थे, किंतु घर पर वे हमेशा चिढ़-चिढ़ करते रहे. संधु या उसके किसी छोटे भाई का कोई व्यक्तिगत व्यय हो सकता है, ऐसा उन्होंने जीवन में कभी नहीं सोचा. कालेज के दिनों में मित्रों की समोसे पार्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में संधु की बारी जिस दिन आती, वह व्यवस्था चुपचाप कोई दूसरा साथी कर लेता और किसी को कहीं भी उसमें अस्वाभाविक नहीं दीखता. रविवार के दिन हम अक्सर अंडे लाते, मकान मालकिन बुढ़िया की चोरी से उनके आमलेट बनाते और छिलके किसी कागज की पुड़िया में बांधकर बहुत दूर सड़क पर फेंक आते. ऐसा करते समय संधु और मैं बेहद चौकन्ने रहते. तवे पर जैसे ही मैं आमलेट डालता, संधु दरवाजे पर रहता, ताकि कोई एकाएक अंदर न चला आये.

संधु के एम. एस-सी. होने तक मैं एक स्थानीय महाविद्यालय में अध्यापन करने लगा था. इन दिनों उसने इधर-उधर एप्लाय करना प्रारंभ कर दिया था. शुरू में उसे कई स्थानों से निराश भी होना पड़ा और ये छोटी-छोटी असफलताएं उसे अंदर तक बिखेर जाती थीं. ऐसे क्षणों में वह बेहद तल्ख हुआ करता था. ब्यूरोक्रेसी, भ्रष्टाचार आदि के खिलाफ उसके चेहरे पर एक अजीब किस्म का तिरस्कार दिन भर बना रहता. मेरे लिए भी उसका इग्नोर किया जाना दुखद था. हम दिन भर भ्रष्टाचार को गाली देते रहते. शाम को अपनी भड़ास शुक्लाजी के यहां निकालते.

शुक्लाजी रिटायर्ड विधुर थे. नितांत एकाकी. उनका ड्राइंग रूम हमेशा हमारा इंतजार करता रहता. उनकी एक मात्र लड़की ही अपनों में थी, जो इन दिनों सागर में पढ़ रही थी. जब तक हम लोग उनके घर रहते, चर्चा करते, उनका मन लगा रहता. वे स्वयं को व्यस्त अनुभव करते. घंटों चलनेवाली बहसों से वे कभी तंग नहीं आते.

अंततः प्रतियोगी परीक्षाओं के बाद संधु का सलेक्शन कस्टम में हो गया. इसी बीच उसके पिता ने तगड़ी दहेज रकम के साथ एक अच्छी लड़की से उसका रिश्ता पक्का कर दिया. संधु और दहेज, थोड़ा अटपटा लगा. शुक्लाजी के घर चलने वाली नियमित बैठक में मैंने सोचा कि इस विषय पर चर्चा की जाये, किंतु बात आयी-गयी हो गयी. बीच में किसी मित्र ने फक्र से कहा, "सड़े सड़े बाबू दस-दस हजार ले रहे हैं. फिर अपना संधु तो इत्ता बड़ा अफसर है."

हमारे तमाम प्रगतिशील मित्र संधु की बारात में गये. जैसे ही हम लड़की वाले के घर पहुंचे, अच्छी-खासी अफसरी हम सबके चेहरे पर बिछ गयी. जैसे संधु ही नहीं, हम सब भी कस्टम में पहुंच गये हों अथवा भारत का संपूर्ण विदेशी व्यापार हम बारातियों के हाथ में आ गया हो. विवाह मंडप में वे तमाम ढकोसले हो रहे थे, जिनकी संधु और हम अक्सर आलोचना किया करते थे, किंतु यहां पहुंचते ही हम एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के पुर्जे बन गये कि उनके सामने न केवल संधु नतमस्तक था, बल्कि हमें भी कहीं कुछ असंगत नहीं लग रहा था.

बाद में महीनों इस विवाह में प्राप्त गुप्त दहेज चर्चा का विषय बना रहा. हम प्रगतिशील मित्र हमेशा की तरह दहेज की सार्वजनिक आलोचना करते रहे. दहेज के नाम पर बहुओं को जला देने वालों को लानतें भेजते रहे, किंतु हमने संधु के संदर्भ में प्रचलित अवधारणाओं को ईर्ष्यालु लोगों द्वारा मचाये गये बवंडर से ज्यादा तरजीह नहीं दी. पाटिल ने तो यहां तक कहा, "जिसके पास देने को है, वह देगा. संधु कोई डाका डालने तो गया नहीं, मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि इनकी. . .क्यों जल रही हैं?"

विवाह के बाद संधु अपनी नवनियुक्ति पर चला गया. शुक्लाजी के घर की नियमित गोष्ठी उसके बगैर भी चलती रही. फिर भी संधु जैसे बेबाक और प्रभावशाली वक्ता के बगैर वह रसहीन प्रतीत होती. संधु बीच-बीच में छुट्टियों में यहां आता रहता, किंतु उसका इस तरफ आना क्रमशः कम होता गया. हम लोग उसके आगमन की सूचना पाकर उससे मिलने जाते. उसके चेहरे पर भी अब अपने पिता की तरह व्यस्तताएं, चिंताएं दीखने लगीं. वह हमारे किसी समाचार में दिलचस्पी दिखाये बगैर अपने भीतर से देर से आने के संदर्भ में बताता, "कुछ जरूरी फाइलें थीं. छुट्टी के बावजूद उन्हें साथ लाया हूं. रात गये तक उन्हें निपटाता रहा और इसीलिए नींद नहीं खुल पायी."

धीरे-धीरे पता नहीं किस समय, कैसा परिवर्तन हुआ कि संधु के आत्मीय लोगों की सूची में यहां के व्यापारी, लायंस क्लब के लोग, जिनके रिश्तेदार जो विदेशी व्यापार में दिलचस्पी रखते थे, आ गये और हम लोग परिचितों की श्रेणी में चले गये. अब न हमें उसके आगमन पर कोई उत्साह था और न उसमें हमारे प्रति कोई खास दिलचस्पी. दरअसल संधु का क्लास बदल गया था. जहां हम आज तक निम्न मध्यम वर्ग की दहलीज पर खड़े थे, वहां संधु न केवल उच्च वर्ग में प्रवेश कर गया था, बल्कि वहां प्रतिष्ठित भी हो गया था. बहरहाल, अलगाव की प्रक्रिया न महसूस करते हुए उस से इंकार नहीं किया जा सकता था.

शुक्लाजी के घर से दूसरी बार बुलावा आ गया. मैं अपने बेतरतीब फैले कागजों को वैसा ही छोड़कर भागा. सीढ़ियों पर ही पाल के चीखने की आवाज सुनाई दी. मुझे लगा, आज फिर कोई विसंगति इसे चुभी होगी और आदत के मुताबिक यह अपनी भड़ास निकाल रहा है, किंतु कमरे में देखा, सारे मित्र सामान्य से अधिक गंभीर थे.

कमरे में मेरे आगमन से पाल के धारा प्रवाह वक्तव्य में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं हुआ. वह कह रहा था, "संधु ने हमारे बीच बैठकर भ्रष्टाचार के विरुद्ध जेहाद छेड़ने की बात कही थी. यह सामने खड़ा नगरपालिका हाल गवाह है, जिसमें खड़े होकर उसने बड़े तल्ख शब्दों में ब्यूरोक्रेसी के आचरण पर प्रश्नचिह्न लगाये थे और देश की अस्मिता के साथ उसका तारतम्य स्थापित हो गया था. आज वही हमारे बीच का सिद्धार्थ शहर जाकर डाकू बन गया और हम उसे कुछ नहीं कह सके. क्या ये हमारी नैतिक जिम्मेदारी नहीं थी कि हम उससे पूछते कि इतना बड़ा होटल कैसे खड़ा कर लिया. हम उसी वेतनमान में कालेज की मास्टरी करते हुए अपना बाथरूम नहीं बनवा पाये?"

सामान्य निंदा प्रस्ताव की तुलना में बात आज निश्चित ही कुछ अलग थी. एक साथ सारे प्रगतिशीलों की उपस्थिति भी बता रही थी कि गोष्ठी पूर्व नियोजित है और संभवतः विषय भी तयशुदा हो. किंतु इसके पहले मैंने पाल को संधु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

कब तलक यूं चीखना नारे लगाना है हमें?
कोई बतलाये कहां ऐ दोस्त, जाना है हमें??

हर तरफ गतिरोध, अवरोधक कहां तक जूझिए,
भागते ही भागते क्या टूट जाना है हमें?

आसमानों में बहुत से पुल, बगीचे, खेतियां,
और इन पर से गुजर कर स्वर्ग पाना है हमें.

रोशनी पीकर बहुत से मर गये यह न्यूज है,
पर अंधेरों में हमेशा मुस्कराना है हमें!

● अहद 'प्रकाश'

के लिए इतना तल्ख कभी नहीं देखा. शायद किसी नयी घटना के संदर्भ में यह आपात बैठक बुलाई हो. मैंने पाल के वक्तव्य के पीछे जाकर भी झांकने का प्रयास किया, किंतु अवचेतन में कहीं कोई ऐसी घटना अथवा तथ्य नहीं उभरा, जिसका सीधा संबंध पाल की इस तल्खी से हो. थोड़ी-सी चुप्पी के बाद जमना कहने लगा, "हम सब बेईमान हैं, गले तक भ्रष्ट. हमें भ्रष्टाचार का अवसर नहीं मिला. इसीलिए यहां बैठकर नैतिकता अथवा ईमान की बातें कर रहे हैं. यदि हममें से कोई दूकानकार होता तो हम तराजू की नैतिकता पर बहस करते. कम तौलने की प्रैक्टिस करते. यदि ऐसा नहीं है तो, या नहीं होता तो क्या कारण है कि हमारे बीच का आदमी, हमारे संस्कार में पला, हमारा उदाहरण, हमारा सबसे तल्ख साथी आज भ्रष्टाचार शिरोमणि बन बैठा है."

जहूर ने जमना की बात का समर्थन दिया, "कालेज की स्टेशनरी का उपयोग हम करते ही हैं. आज तक हममें से किसी ने लिफाफे नहीं खरीदे, क्या यह भ्रष्टाचार नहीं है? हमारे दोगलेपन का उदाहरण देखो, हम अपने बच्चों को रात-दिन ईमान का पाठ पढ़ायेंगे—किंतु भीतर कहीं हमारे मन में भी है कि हमारा बच्चा भी संधु की तरह सफल हो."

शुक्लाजी भी कुछ कहना चाहते थे कि श्रीमती वर्गीज आ गयीं. वे बाजू के फ्लैट में ही रहती हैं और शायद हमारी चर्चा सुनकर ही आयी हैं. शुक्लाजी के साथ उनकी इस विषय पर चर्चा हो चुकी थी और वे बहस सुनने के बजाय उसमें हिस्सा लेने आयी थीं. वैसे बीच की दीवार में रोशनदान आदि इस उदात्तता के साथ लगाये गये थे कि किसी का मात्र बहस सुनने के लिए इधर आना कतई आवश्यक नहीं है. हम उनका चेहरा देखने लगे कि वे इस तल्ख बहस में किस तरह की हिस्सेदारी चाहती हैं.

उन्होंने कहा, "हम कई बार इन घिसे-पिटे मुद्दों पर चर्चा कर चुके हैं. चलो, हमने मान लिया, हमारा सिद्धार्थ भ्रष्ट हो गया. हमें भी यदि अवसर मिलता तो हम भी उसी क्लास में शामिल होते, जिसमें सिद्धार्थ शामिल हो गया. अब हमें यह भी ज्ञात है कि हमारी अग्रज पीढ़ी दोगली है. कक्षा में ईमान की बातें करेगी, किंतु अपने बच्चे को पुलिस आफीसर मात्र इसलिए बनाना चाहती है कि उसके भ्रष्टाचार से अपनी वृद्धावस्था सुख से बीते, किंतु इसमें नया क्या है? यह यथास्थिति है और हमें अब तय करना है कि इस पर कहां से और कैसे प्रहार किया जा सकता है."

मिसेज वर्गीज आगे बोलीं, "बात छोर से प्रारंभ करें तो हम स्थानीय लोगों द्वारा किये गये विसंगत कर्मों का विरोध करें. उन्हें दिये जाने वाले सामाजिक सम्मान को न केवल बंद करें, बल्कि उन्हें अपमानित करें ताकि वे भ्रष्ट तरीकों से उपार्जित धन को लेकर शर्मिंदा हों. भ्रष्टाचार कोई अलौकिक अथवा अमूर्त विषय नहीं है, बल्कि एक भौतिक क्रिया है, जिस पर प्रहार करने के लिए हमें मात्र चिंतन नहीं, भौतिक रूप से कुछ करना होगा और वह 'करना' हमें अपने शहर, अपने मित्रों के बीच से प्रारंभ करना होगा." पाल ने जोड़ा, "मसलन, हमने कालेज के गोंद और लिफाफे का भी भ्रष्टाचार किया है तो हमें अपना अपराध स्वीकार कर लेना चाहिए और अपने लिए सजा की याचना करनी चाहिए."

मुझे, श्रीमती वर्गीज को छोड़कर प्रस्तावक पाल समेत सभी मित्र खड़े हो गये. सबने एक स्वर में कबूल किया, "मैं भ्रष्ट हूं. मुझे सजा दी जाये." वैसे कालेज की स्टेशनरी पर मैंने भी कहानियां लिखी हैं, किंतु मैं एक स्थापित लेखक सड़ी-सी बात के लिए कैसे स्वीकारोक्ति दे सकता हूं. मुझे यह भी अपेक्षा नहीं थी कि इतने सारे लोग इतने सहज ढंग से खड़े हो जायेंगे, अन्यथा मैं भी खड़ा हो जाता. आखिर यहां कौन-सी सजा तजवीज हो रही थी. बाद में अकेले खड़े होना थोड़ा अस्वाभाविक लगा. दूसरी बात यह भी थी कि जब मिसेज वर्गीज निष्कलंक रह सकती हैं तो मैं क्यों नहीं रह सकता? आखिर मुझे कालेज के लिफाफे उठाते किसी ने देखा तो नहीं था. अब तक लोग बैठ गये थे. पाल कहने लगा, "अब हम अपने पास-पड़ोस के भ्रष्टाचारी सज्जनों के आचरणों को जनसामान्य के समक्ष रखेंगे. इनकी सार्वजनिक निंदा करेंगे और इस सिलसिले में हमारे सबसे नजदीकी मित्र संधु पर कार्यक्रम आयोजित किया जायेगा."

प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार होना था, हुआ. हालांकि मैं इसके व्यावहारिक स्वरूप की कल्पना से भी त्रस्त था कि मैं संधु की नयी फियेट रोककर कैसे उससे हिसाब मांग सकता हूं. फिर मुझे इस प्रकार का कोई संवैधानिक अधिकार भी तो प्राप्त नहीं. क्या लोग यह नहीं समझेंगे कि मैं फटीचर मास्टर मात्र ईर्ष्यावश ये तमाशा मचा रहा हूं? फिर अकेले संधु को मैंने ईमानदार बना भी दिया तो क्या देश का भ्रष्टाचार मिट जायेगा? फिर उसने छोटे भाई के प्रोजेक्ट के लिए लोन स्वीकृत करवा दिया तो यह एक बड़ा काम होगा.

शुक्लाजी के घर इनर कैबिनेट में यह तय हो गया था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

नवीनतम : महत्त्वपूर्ण

☐ **महादेवी : प्रतिनिधि गद्य रचनाएं**

☐ **महादेवी : प्रतिनिधि कविताएं**

1982 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा की प्रतिनिधि रचनाओं के महत्वपूर्ण संकलन जिनमें उनके चिंतन, लेखन, आस्था की झलक मिलती है।

डिमाई, 340 — **45.00**

डिमाई, 220 — **35.00**

अमृता प्रीतम रचनावली

☐ **अमृता प्रीतम : चुनी हुई कविताएं**

अमृता जी द्वारा अपने संपूर्ण काव्य में से चुनी 74 कविताएं। हिंदी रूपांतर, पंजाबी मूल (देवनागरी लिपि में) के साथ।

डिमाई, 212 — **35.00**

☐ **अमृता प्रीतम : चुने हुए उपन्यास**

लेखिका के बहुचर्चित आठ उपन्यासों का संकलन एक ही जिल्द में—पिंजर, नागमणि, यात्री, आक के पत्ते, कोई नहीं जानता, यह सच है, तेरहवां सूरज, उनचास दिन।

डिमाई, 736 — **90 00**

☐ **अमृता प्रीतम : सेलेक्टेड पोयम्स**

अमृता जी की काव्य-यात्रा के महत्वपूर्ण पड़ावों का प्रामाणिक दस्तावेज। अंग्रेजी रूपांतर के साथ ही पंजाबी मूल भी। जाने-माने लेखक-पत्रकार खुशवंत सिंह द्वारा संपादित।

डिमाई, 178 — **38.00**

☐ **अमृता प्रीतम : चुनी हुई कहानियां, चुने हुए निबन्ध**

अमृता जी की बहुमुखी प्रतिभा के अकाट्य प्रमाण, विविध रुचि-संपन्न पाठकों के लिए नितान्त उपयोगी।

डिमाई, 360 — **50.00**

साथ ही—अमृता जी का नवीनतम उपन्यास

☐ **कोरे कागज** क्राउन, 128 — **15.00**

अन्य विशिष्ट प्रकाशन

☐ **महापुरुषों की खोज में (आत्म-चरित)**

बनारसीदास चतुर्वेदी

आत्मकथा में पंडित बनारसीदास जी ने अपनी कहानी के बहाने उस काल खण्ड की विशिष्टतम विभूतियों का प्रामाणिक चित्रण किया है। एक महत्वपूर्ण कृति। नयनाभिराम प्रस्तुति।

डबल क्राउन, 252 — **55.00**

☐ **शान्तला (उपन्यास, भाग एक)**

सी. के. नागराजराव

होय्यसल राजवंश के महाराजा विष्णुवर्धन की पट्टरानी शान्तला को केंद्र में रखकर तीन पीढ़ियों की कथा को देश और समाज के समूचे जीवन परिवेश की पृष्ठिभूमि में प्रतिबिंबित किया है लेखक ने। कन्नड़ मूल से हिंदी में अनूदित। शेष तीन भाग शीघ्र प्रकाश्य।

डिमाई, 418 — **48.00**

☐ **निशांत के सहयात्री (उपन्यास) कुर्रतुल-ऐन हैदर**

प्रतिष्ठित लेखिका के मूल उर्दू उपन्यास 'आखिर-ए-शब के हमसफर' का हिंदी रूपान्तर जिसमें बंगाल के क्रांतिकारियों की कहानी है। महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज।

डिमाई, 352 — **40.00**

☐ **उर्दू शायरी : मेरी पसंद—श्रेयांस प्रसाद जैन**

उर्दू शायरी के मर्मज्ञ और समयानुसार अपनी बात को शेर के माध्यम से पुष्ट करने वाले साहू श्रेयांस प्रसाद जी द्वारा चुने हुए शेरों का महत्वपूर्ण संकलन जिन्हें विभिन्न वर्गों में विभाजित करके प्रस्तुत किया गया है। आकर्षक साज-सज्जा।

डिमाई, 84+22 — **22.00**

भारतीय ज्ञानपीठ

बी/45-47 कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-110001 फोन : 322294

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायब तहसीलदारों से सार्वजनिक रूप से यह पूछा जायेगा कि वे अपने वेतन का अस्सी प्रतिशत तक मकान किराया कैसे दे पाते हैं? इस सिलसिले में उनके पे-बिल और किराये की रसीदों की फोटोकापी जनता के समक्ष प्रस्तुत की जानी थी. पाल ने ही सारी सूचना एकत्रित की थी.

बिना किसी औपचारिकता के सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई. सर्वप्रथम शुक्लाजी ने जागरूक नागरिक मोर्चे की आवश्यकता और जागरूक नागरिकों के कर्तव्य बताये. साथ ही वर्तमान संदर्भों में मोर्चे की प्रासंगिकता पर विशद चर्चा की. श्रीमती वर्गीज ने अपनी बारी में अपने आसपास के विसंगत तत्वों के खिलाफ मोर्चा खोलने की आवश्यकता पर बल दिया. इस सिलसिले में उन्होंने बताया कि हमारा पहला लक्ष्य भ्रष्टाचार है और उसके विरुद्ध हमें जेहाद के स्तर पर लड़ना है. पाल ने सबसे पहले नायब साहबों के कार्यों की समीक्षा की और अपने कुल वेतन से अधिक मकान किराया देने वाले एक नायब साहब के घर मोर्चे की सभा समाप्ति पर एक अनुशासित जुलूस पहुंचा.

जुलूस नायब साहब के घर तक पहुंचते समय एकदम मौन और अनुशासित था. नायब साहब अपने घर के सामने इतने लोगों को देखकर समझे कि शायद शासन को कोई ज्ञापन देने के लिए भीड़ एकत्रित हुई है. वे अच्छी खासी अफसरी चेहरे पर बिछाकर सामने ओटले पर एड्रेस करने के मूड में आकर खड़े हो गये.

श्रीमती वर्गीज ने आगे जाकर उन्हें उनके मकान किराये की रसीद की फोटो कापी और पे-बिल की फोटोकापी प्रदान की. वे बेचारे समझ नहीं पाये कि आखिर मामला क्या है? अंततः मिसेज वर्गीज ने उनसे निवेदन किया कि जागरूक नागरिक जानना चाहते हैं कि आप अपने वेतन से अधिक किराया कैसे दे पाते हैं? हम सब लोगों का यह स्पष्ट और दृढ़ मत है कि आप अपनी शेष जरूरतों के लिए भ्रष्टाचार पर आश्रित हैं. हम सब आपकी निंदा करते हैं और आपको भ्रष्टाचार शिरोमणि की उपाधि प्रदान करते हैं.

पाल ने विश्वविद्यालय की उपाधि की शक्ल का फ्रेम में जड़ा हुआ भ्रष्टाचार शिरोमणि का एक प्रमाण-पत्र उन्हें पकड़ा दिया. नायब साहब घबरा गये. उन्हें इस तरह के किसी हमले की अपेक्षा नहीं थी. पाल के द्वारा दी गयी वह उपाधि अभी तक उनके हाथों में थी और सामने दो सौ से अधिक लोगों की भीड़ उनसे प्रश्न कर रही थी. वे तेजी से घर से भागीं. उन्होंने घर में घुसते ही अंदर से दरवाजे बंद कर लिये. प्रसन्नता का विषय यह था कि हड़बड़ी में जड़ी हुई भ्रष्टाचार शिरोमणि की उपाधि भी वे अपने साथ ले गये. सामने खड़ी भीड़ ने भ्रष्टाचार शिरोमणि की तीन बार जय बोली और भीड़ अनुशासित ढंग से चली गयी.

जागरूक नागरिक मोर्चा रातोंरात लोकप्रिय हो गया. सरकारी विभागों के भले लोग मोर्चे को उपयोगी जानकारी देने लगे. मोर्चे की अनुशासित कार्यवाही भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक कारगर कदम सिद्ध हुई. पहले ही सफल कार्यक्रम का परिणाम यह हुआ कि तमाम नायब तहसीलदारों के साथ ही शेष सरकारी ऑफिसर्स भी छोटे मकानों में चले गये.

अब हमारा अगला लक्ष्य संधु था. बिना कस्टम चुकाया विदेशी सामान उसके यहां काफी था. उसकी फेहरिस्त एवं अन्य जानकारी बालमुकुंद ने दे दी थी. उसने बताया था कि संधु को विदेशी चीजें कितनी पसंद हैं. बड़े मुंशीजी के यहां से पिछले बार मन्नू की शादी में ऐसा बढ़िया टू इन वन भेजा गया था कि संधू ने प्रसन्न होकर उनके रिटर्न से अंतिम शून्य काट दी थी और बाईस हजार का रिटर्न मात्र बाईस सौ रह गया था.

जानकारी को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में पाल माहिर है, किंतु शुक्लाजी के मन में संधु के प्रति साफ्ट कार्नर है, मुझे भी हिचक है कि संधु के सामने खड़े होकर टू इन वन की बात कैसे की जा सकती है? जिसने स्वयं मद्यपान का तल्ख विरोध किया हो, उससे कैसे पूछा जा सकता है कि भैया, वेतन से इतनी महंगी कैसे खरीद लेते हो? मैंने उससे ढेर सारी अच्छी बातें सीखी थीं. वह मेरा वर्षों अजीज रहा था. मिसेज वर्गीज शायद मेरी ऊहापेह समझ रही थीं. इसलिए उन्होंने घोषित कर दिया था कि संधु वाले कार्यक्रम की संपूर्ण जिम्मेदारी मुझ पर रहेगी.

दरअसल मुझे लग रहा था कि यह कार्यक्रम संधु के साथ-साथ मेरे ईमान को टटोलने के लिए ही बनाया जा रहा है. पाल और मिसेज वर्गीज चाहते थे कि मोर्चे के सदस्यों के मन में अपने-पराये की भावना समाप्त हो जाये. हम अपनों से ही तो सुसंस्कृत आचरण की अपेक्षा कर सकते हैं. उनके आचरण को सुधार सकते हैं. सारे देश के नागरिक यदि जागरूक हो जायें और अपने-अपने संधु को सुधार लें तो सचमुच देश सुधर जायेगा, अन्यथा व्यवस्था के पास तो ऐसा कुछ नहीं होता कि वह लोगों को सदाचरण तक ले जाये.

सुबह-सुबह दुबेजी आ गये. वे काफी गंभीर और त्रस्त थे. आते ही कहने लगे, "देखा, साला पाल अपनी व्यक्तिगत इमेज बना रहा है."

मैंने कहा, "यार, वह मेहनत भी करता है. जाने कहां-कहां से जानकारी एकत्रित करता है?"

मैं उधेड़बुन में ही था कि नीचे वाले गुप्ताजी ने आवाज लगायी, "भैया, तुम्हारा टेलीफोन है."

मैं लपककर नीचे पहुंचा. टेलीफोन पर संधु था. उसने मुझसे पूछा कि वहां क्या तमाशे कर रहे हो आजकल? मैंने तुम्हारे संबंध में बड़ी उल्टी-सीधी बातें सुनी हैं. तुम्हारे लिए मैंने लोन की बात कर ली है. मैंने केवल 'अच्छा' कहा और टेलीफोन रख दिया.

आज अचानक संधु को मेरे लोन का ध्यान आ गया और वह भी स्वयं टेलीफोन पर सूचित कर रहा है, किंतु आज यह लोन का प्रस्ताव यथास्थिति की ओर परिवर्तन आकाक्षी को फेंका गया टुकड़ा है. यह सब बहुत पुरानी कहानी है. अब हमें इस स्थिति से आगे प्रस्थान कर देना है. मुझे संधु का यह व्यवहार और घटिया लगा. मैं उसे प्रदान करने के लिए, 'भ्रष्टाचार शिरोमणि' की उपाधि तैयार करने लगा. □

● गढ़ीपुरा, हरदा (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू बाजार: करके अहसान भी जो नीची नजर रखते हैं!

हिंदुस्तान की सबसे बड़ी रियासत हैदराबाद का दीवान बहादुर महाराजा किशन प्रसाद दिल्ली के 'उर्दू बाजार' में एक बदनसीब फटेहाल फकीर के आगे सिर झुकाये क्यों खड़ा था?... क्यों उसे देख भर पाने की इस घड़ी को बार-बार अपने जीवन की अनमोल घड़ी मान रहा था......यह बात क्या वहां मौजूद हुजूम में से कोई भी समझ पाया था. . .?

गलियां : जहां इतिहास कैद है

■ बाला दुबे

सन् 1901...
महाराजा सर किशन प्रसाद बहादुर, जी. सी.आई. ई., यामिन-उस-सल्तनत, दीवान बहादुर हैदराबाद!

मुगल सम्राट अकबर के दरबार के एक रत्न—टोडरमल के शजरे की कोमल-सी पत्ती. महाराजा किशन प्रसाद ने इंसानियत की शराब पी थी, तभी तो वे गैरों के दुख-दर्द को अपनी जिंदगी में उतार लेते थे. उन्हें गरीब-अमीर दोनों में इंसान की रूह झलकती, कुदरत का खजाना नजर आता. मजहब का कोहरा उन्हें कभी भटका नहीं पाया, और अलग-अलग अल्लाह के धोखे उन्हें बहका नहीं सके. एक हिंदू होने के नाते उन्होंने संस्कृत पढ़ी, पेशकारी और दीवानी की खातिर अर्थ-शास्त्र भी पढ़ा. और जब शगल करने को मन मचला तो शायरी, संगीत, चित्रकला, फोटोग्राफी—हर कला के जायके लिये और उनके सिद्ध बन बैठे. मानव-रहस्य को समझने की जब चेष्टा की तो चिकित्सा-प्रणाली और ज्योतिष को भी साध लिया. कौन-सा शौक उनसे नजर बचाकर निकल सका! यहां तक कि वे कुम्हार के चाक पर बैठकर इतने बढ़िया बर्तन बनाते कि उनके सामने मंजे हुए कुम्हार भी कानों को हाथ लगा लेते. और फिर परिस्थितियों ने उन्हें एक बढ़िया रसोइया भी बना डाला.

'धरम-ईमान' की बारीकियों से जब वे उलझे तब अपने ग्रंथों के अतिरिक्त कुरान शरीफ, बाइबिल, ग्रंथ साहिब, सबका रस छक के पिया और फिर इसी नतीजे पर पहुंचे कि सत्य की खोज ही मनुष्य का लक्ष्य है. शेखो-बिरहमन के गोरखधंधे उन्हें कभी बरगला नहीं सके. उन्हें हर कोई सिर्फ कुदरत का खिलौना नजर आता. और जब वे इश्क की भंवर में जा फंसे तो अपने पुरखों के 'धरम-करम' की केंचुली उतारने पर भी आमादा हो गये. आखिर क्या करते—गौसिया बेगम उनके रोम-रोम में समा जो गयी थी. बेले जैसा रंग, रेशम जैसा शरीर, मुंहबंधी गुलाब की कली जैसे होंठ, शरबती आंखें. जब लुक-छुप-कर गौसिया उनसे मिलने आती तब महाराजा किशन प्रसाद सब कुछ भुला बैठते. और जब उनके प्यार को परखने के लिए मुल्लाओं ने मजहब की कसौटी निकाली तब वे अपने ईमान को परवान चढ़ाने को भी तैयार हो गये. पर उनकी वफा की महक का एक क्रद्रशनास गंधी तभी बीच में आ टपका—निजाम हैदराबाद महबूब अली पाशा—उनका आका. निजाम हैदराबाद ने तब हुक्म दिया था उन्हें—'अपने पुरखों का ईमान नहीं छोड़ेंगे.' और निजाम की ही तो शह पाकर गौसिया अपने घर से भागकर महाराजा किशन प्रसान के आंगन में आ गयी थी. फिर तो काजी भी आ गया था वहां—मियां-बीवी की राजी में शामिल होने और गौसिया का निकाह हो गया महाराजा किशन प्रसाद के साथ. महाराजा किशन प्रसाद की अन्य रानियों-पटरानियों ने कुछ मीनमेख भी नहीं निकाला. गौसिया भी वैसे उनकी छत के नीचे हमेशा मुसलमान ही रही. उसके आने से यह जरूर हुआ कि महाराजा किशन प्रसाद के यहां सब त्योहार बड़ी धूम-धाम से मनाये जाते—होली, दीवाली, ईद, शबरात. और फिर तो हैदराबाद और ही रंग में रंग गया. सर आस्मान जाह और उनके भतीजे सर विकार उल उमरा ऐसी दीवाली मनाते कि हिंदू शरमा जाते—और हिंदू मुहर्रम में वह जोश दिखाते कि मुसलमानों की आंखें नम हो जातीं.

जब अंग्रेज रेजीडेंट ने मिस्टर कैसन वॉकर को फाइनेंस मिनिस्टर बनाकर हैदराबाद में अटकाया तब महाराजा किशन प्रसाद ही ने उसे नकेल पहनायी. उन्होंने फिर आवाज उठायी थी, जब हमारे पास 'मुल्की उम्मीदवार' हैं तब हम क्यों अंग्रेजों को बड़ी-बड़ी नौकरियां दें. और धीरे-धीरे महाराजा किशन प्रसाद ने अपनी जिद को साकार बनाकर ही छोड़ा.

वे वफादारी को अपना ईमान समझते थे. निजाम हैदराबाद से वे दो साल बड़े थे पर जब भी कभी उम्र का जिक्र छिड़ा तो यही बोले, "हजूर, मैं आपसे दो साल पहले पैदा हुआ था. . ." यह कभी नहीं कहा कि मैं आपसे दो साल बड़ा हूं.

...और एक दिन यही महाराजा किशन प्रसाद नवाब मेंहदी नवाज जंग के साथ दिल्ली आये थे. दिल्ली की सिविल लाइंस में खड़े एक विशाल अंग्रेजी होटल में ठहरे थे दीवान बहादुर. और जब उस दिन दिल्ली घूमने निकले तो घूमते-घूमते जामा मस्जिद पर आ पहुंचे. बड़ी देर तक देखते रहे बादलों को चूमती मीनारों को. और जब जामा मस्जिद से लगे उर्दू बाजार की सैर करने लगे तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी निगाह एक उजड़े हुए फकीर पर पड़ी थी. फटेहाल, सूख होंठ, उदास निगाहें! . . .महाराजा किशन प्रसाद ठिठके. न जाने किस प्रेरणा ने उनके पांव बांध लिये.

"ये कौन हैं?" उन्होंने पास खड़े लोगों से पूछा था.

लंबी दूधियादाढ़ी वाले एक अस्सी साला बूढ़े बुजुर्ग ने जवाब दिया था, "जनाब, इनके परदादा कभी हिंदुस्तान के बादशाह तस्लीम किये जाते थे. इसी दिल्ली में कभी मुगलों का एक आखिरी चिराग टिमटिमाया था जिसे अपने ही कूचे में दो गज जमीं तक नसीब न हुई. उसी बदनसीब के ये पोते हैं—मिरजा कोयाश के बेटे. . ."

और आगे वह बुजुर्ग कुछ कह न सका. आंखों में गर्म-गर्म मोती भर गये, आवाज घुट गयी. महाराजा किशन प्रसाद टकटकी बांधकर उस फकीर को देखते रहे. मुगल बादशाहों का बेटा और यह हालत? उनकी आंखों के आगे इतिहास का मंच घूम गया. और जब सन् 1857 की कहानी कानों में गूंजी तो वे सिहर गये मानो इतिहास चीख-चीखकर उन्हें वह दर्द भरी दास्तान सुना रहा हो. हां—हां, वही बहादुरशाह की दास्तान, उनकी शिकस्त की कहानी. और फिर बाद में क्या-क्या हुआ. बहादुर शाह जफर के बूढ़े बेटे शहजादा मिर्जा कैसर को सरेआम फांसी दी गयी कि नहीं?. . .शहजादे मिर्जा मुहम्मद शाह जो अकबर शाह द्वितीय का पोता था और आजीवन गठिया का रोगी होने के कारण सीधा खड़ा तक न हो पाता था उसे भी तो फांसी पर लटकाया था अंग्रेजों ने! बहादुर शाह की बेटी राबिया बेगम जब भूख बरदाश्त नहीं कर सकी तब उसने इसी दिल्ली के एक हुसैनी बावरची से शादी कर ली थी या नहीं? और बहादुरशाह की एक दूसरी बेटी फातिमा सुलतान तो ईसाई पादरियों के एक जनाने स्कूल में 'आया'बन गयी थी. और बहादुर शाह का ही बेटा मिर्जा कोयाश अपनी जान बचाकर जंगलों की ओर भाग गया था. और आज यह जो फकीर महाराजा किशन प्रसाद की

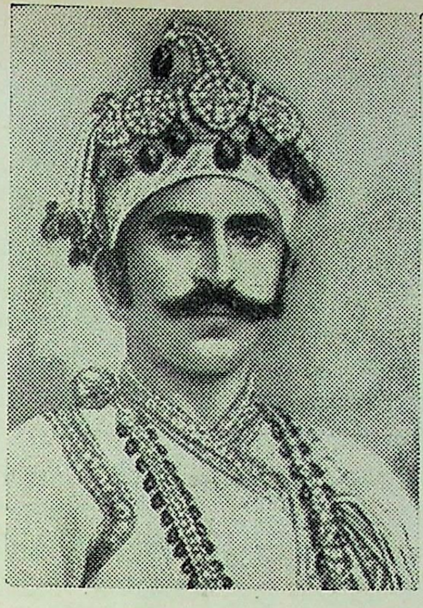

● महाराजा किशन प्रसाद

डबडबायी आंखों के सामने धुंधला-धुंधला-सा नजर आ रहा है, यह उसी बदनसीब मिर्जा कोयाश का शकस्ताहाल बेटा है.

महाराजा किशन प्रसाद की आंखों से झरने फूट पड़े.

'देख रहे हो किशन प्रसाद? तुम्हारे आका निजाम महबूब अली पाशा के परदादा निजाम उल मुल्क कभी इस फकीर के परदादा के नौकर थे. . .' उनके अंतरमन के गुंबज में उनकी आत्मा की खामोश आवाज गूंज उठी.

महाराजा किशन प्रसाद के अंदर तब वफा की शमा भड़क उठी थी. रोते हुए वे उस फकीर से लिपटकर बोले, "चलिए मेरे साथ हुजूर, मैं आपकी ही तलाश में निकला था."

पास खड़ी भीड़ चौंकी. हिंदुस्तान की सबसे बड़ी रियासत का दीवान बहादुर एक बदनसीब फटेहाल फकीर को 'हुजूर' कह रहा है? सिर से पांव तक कीमती लिबास पहने, इत्र से मुअत्तर ये रईस एक मैले-कुचैले फकीर को गले लगा रहा है?

मिर्जा को याश का वह बदनसीब बेटा महाराजा किशन प्रसाद को टुकुर-टुकुर देखता रहा. उसे लगा जैसे खुदा ने उसकी तड़प का अंदाज लगाकर जिब्रील फरिश्ते को एक हिंदू राजा के वेश में भेज दिया हो. फिर उसने महाराजा किशन प्रसाद की दी हुई दौलत देखी. इतनी सारी दौलत? वह सिहर उठा और फिर यकायक महाराजा किशन प्रसाद से लिपट कर रोने लगा. उसके दिल की दुआ आंखों से बहने लगी थी शायद.

और महाराजा किशन प्रसाद के पास एक छिदाम भी नहीं बचा. आखिर होटल का बिल देना था. हैदराबाद जाने के लिए किराया चाहिये था, रास्ते का खर्च भी था. जब नवाब मेंहदी नवाज जंग ने कहा "यह आपने क्या किया महाराजा साहिब?" तब महाराजा किशन प्रसाद के होंठों पर उदास मुस्कराहट फैल गयी और वे बोले, "जरा सोचो तो नवाब साहिब, खुदा ने मेरे ऊपर क्या इनायत की है आज मुझे इस काबिल बनाया कि मैं एक मुगल शहजादे की मदद कर सका. उसने मेरे सामने हाथ फैलाया और मैं उसके हाथ पर कुछ रख सका."

और तब नवाब मेंहदी नवाज जंग पैसे की जुगाड़ में बाहर निकले और तभी किस्मत से उन्हें हैदराबाद का एक सौदागर मिल गया जिससे सारा खर्च उधार लिया गया.

जब मुगल-फकीर वहां से चला था तो उसने महाराजा किशन प्रसाद के दोनों हाथों को बार-बार चूमा था. वह कुछ कहकर दुआ नहीं दे पाया, बस निगाहों से ही सब कुछ बरसाता रहा. और महाराजा किशन प्रसाद उसके सामने नजर झुकाये खड़े रहे, बा अदब, बा मुरव्वत!

दिल्ली के उस होटल की बेजान दीवारों ने कान लगाकर सब कुछ सुना, सब कुछ देखा. चलते वक्त उस फकीर की खामोश निगाहों ने कुछ कहा था शायद . . . हां . . .खामोश आवाज में एक दुआ निकली थी जिसे महाराजा किशन प्रसाद ही सुन सके थे शायद—बहुत धीमी-सी आवाज थी वह. . .

'हम तो बिक जाते हैं उन अहले करम के हाथों
करके अहसान भी जो नीची नजर रखते हैं.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने घड़ी उतारकर रख दी है. आज पांचवां दिन है. नहीं, शायद छठा है. सातवां भी हो सकता है. आज जब उसने पिताजी को चिट्ठी लिखी तो उसे तीन-चार बार तारीख बदलनी पड़ी थी. पहले वह नौ तारीख लिख गया था. फिर दस कर दी और फिर बारह. लेटर बॉक्स में चिट्ठी डालकर जब घर लौटा तो मेज पर दूधवाले का बिल पड़ा हुआ था. उसने देखा, उस पर आठ तारीख लिखी हुई थी.

सुधा अब ऐसे ही करती है. इसके पहले उसने मोदी का बिल भी ऐसे ही मेज पर रख दिया था. कल रात जब सुधा ने कहा था, "मोदी पूछ रहा था, हड़ताल कब टूट रही है." "तो", उसके 'तो' कहने से वह कितना सहम गयी थी. और उसके मुंह से 'तो' निकला भी तो कितने अजीब तरह से था. पर वह भी क्या करे? सुधा कहती है, अब वह बात-बात पर झगड़ने लगता है. सारा दिन मुंह चिढ़ाये रहता है. छोटे से अमित से भी हंसकर नहीं बोलता. वह यह भी कहती है कि अब वह दोस्तों के साथ जोर-जोर से ठहाके लगाने लगा है.

हड़ताल

विश्वनाथ

उसकी आदत थी कि पहले वह खुद को गाली देता और फिर दूसरे को. आज उसने पहले सरकार को गाली दी थी. फिर उसके जी में आया कि किस तरह डाइनामाइट लगाकर कंपनी को उड़ा दिया जाये, लेकिन क्यों? हड़ताल के दिनों के मानसिक द्वंद्व को उकेरती कथा

वह सुधा को कैसे समझाये कि दोस्तों के साथ ठहाके लगाना जरूरी हो गया है. अगर वे सब मिलकर ठहाके नहीं लगायेंगे तो एक दिन सब बैठकर रोने लगेंगे.

आज पचासवां दिन है हड़ताल का. सबसे बिल आये पड़े हैं. एक भी नहीं चुकाया गया. पता नहीं, सुधा ने मोदी को क्या जवाब दिया होगा. पता नहीं, मोदी ने क्या समझा होगा. अभी तीन-चार दिन पहले ही तो सुधा ने कहा था, "राशन लाना है." उसने सुनकर भी अनसुना कर दिया था. सुधा ने फिर कहा था, "सुनिए, कल के लिए भी चावल नहीं हैं. चीनी भी खत्म हो रही है." तब जाने उसके जी में क्यों आया था कि वह चीख पड़े. पर पता नहीं, वह चीखा क्यों नहीं था. उसने इतना ही कहा था, "पहले कौन-सा मैं राशन लाता हूं." और जब अकेला कमरे में था तो उसे अपने आप पर हंसी आयी थी. फिर उसने अपने आपको भद्दी-सी गाली भी दी थी. फिर सरकार को, फिर यूनियनों के लीडरों को. उसके समेत सब नपुंसक हैं, उसने सोचा था. उस समय उसके दिमाग में नपुंसक की जगह इंपोटेंट शब्द आया था. नपुंसक तो बहुत सोचने के बाद उसके हाथ लगा था. तब उसने बड़े धीरे-से अपने आप से कहा था, "स्साले, हम तो अंग्रेजों के भी बाप हो गये हैं.'

अंग्रेजी के प्रति घृणा भी उसकी इन्हीं दिनों बढ़ी थी. उसे लगने लगा था कि यह अंग्रेजी का सारा कारोबार ही ढकोसला है. उसे अंग्रेजी बोलने वाले दोस्त भी अब खास अच्छे नहीं लगते. उसके मुंह से भी जब गिटर-पिटर करके दो-चार शब्द निकल जाते हैं तो उसे लगता है कि वह दिखावा कर रहा है. उसे लगने लगा कि अगर वह अंग्रेजी पढ़ा-लिखा न होता तो उसकी इतनी बुरी हालत न होती. तब शायद उसके दोस्त भी ऐसे न होते, जिनके बीच वह धोबी धुले कपड़ों में ही बैठ सकता है. और तब धोबी धुले कपड़े न होने की उसे शर्म भी न आती. फिर वह खुद ही इस तर्क पर हंस पड़ता है.

पर वह ऐसे तर्क नहीं करे तो क्या करे. आज हड़ताल का पचासवां दिन है. क्रिकेट का मैच देख रहा होता तो बाकी देखनेवालों के साथ वह ताली बजाकर हाफ सेंच्युरी अप की खुशियां मनाता, पर यहां तो साली गोल्डन जुबली भी फीकी ही जाती दिख रही थी.

पिछले कई दिनों से हड़ताल टूटने की बात सुन रहा है. शायद दस-पंद्रह दिन की बात है, जब वह बाहर से घर आया तो उसने खुशी से सुधा को भींच लिया था. "अरे हटो भी." कहकर सुधा ने उसे झूठमूठ हटाने की कोशिश की थी. और फिर पूछा था, "आखिर यह सब हो किस खुशी में रहा है." पहले तो उसके जी में आया कि वह कहे, क्या इसके लिए भी किसी खुशी की जरूरत होती है—जबसे हड़ताल हुई, प्यार को ही तरस गया है, पर फिर उसने बता ही दिया था, "आज हड़ताल टूटने की खबर आने वाली है." और उस रात वह साढ़े सात बजे से ही रेडियो लगाकर बैठ गया था. कहीं खबर मिस न हो जाये. सुधा भी दाल चढ़ाकर उसके पास आकर बठ गयी थी. और सवा आठ से साढ़े आठ बजे तक वे चार कान सिर्फ रेडियो पर ही लगे रहे थे. दाल भी जल गयी थी, पर खबर नहीं आयी.

आज पचासवां दिन है. उसने फिर सरकार को गाली दी. फिर खुद को. फिर यूनियन को. मां-बहन की गालियां वह पहले कम ही दिया करता था. पर अब साली और कोई गाली ही नहीं निकलती, उसने सोचा. फिर एकाएक उसे आज गाली देने में कुछ गड़बड़ हो गयी है. क्या गड़बड़ हो सकती है, उसने सोचा, और कुछ ही देर में उसे पता भी लग गया कि आज क्रम बदल गया है. उसकी आदत थी कि पहले जब भी वह गाली देता था तो पहले खुद को देता था. और फिर दूसरे को. आज उसने पहले सरकार को गाली दी थी. उसे कुछ अटपटा-सा लगा, पर अच्छा भी लगा. फिर उसके जी में आया, कंपनी को किस तरह डायनामाइट लगाकर उड़ा दिया जाये. फिर उसने सोचा, एक नहीं, सारी कंपनियों को आग लगा देनी चाहिए;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

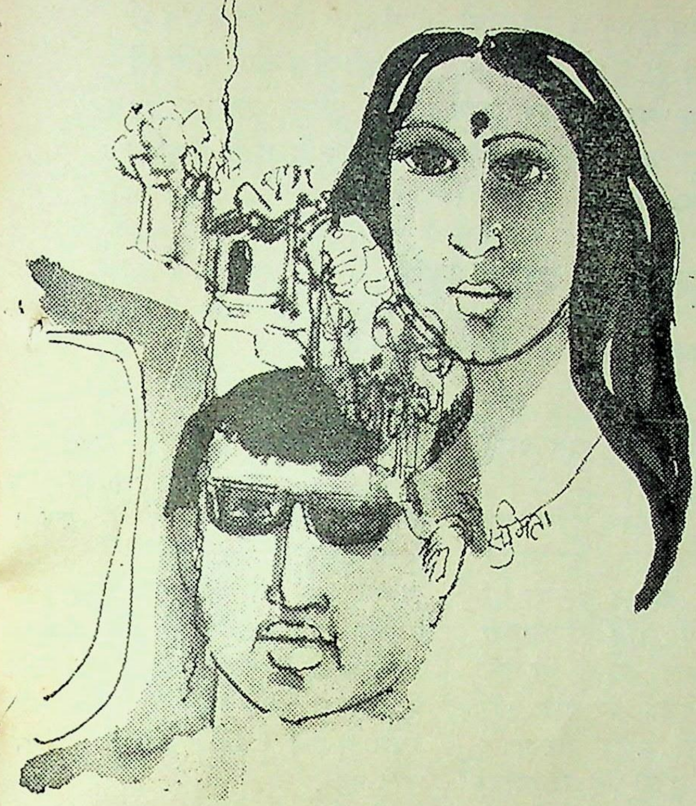

पर उसे डायनामाइट बनाना तो आता ही नहीं. उसे चंद्रशेखर आजाद और भगतसिंह से रश्क होने लगा. वे लोग पता नहीं कहां से सीख गये थे, उसने सोचा. फिर वह कानून और व्यवस्था की दुहाई देनेवालों की बात सोचने लगा.

"साली नौकरीपेशा जात ही कमीनी है." उसने अपने साथ ही अपनी सारी बिरादरी को भी गाली दे दी. 'पचास दिन हो गये और साली सारी की सारी जात जिंदा है. एक भी साला मरा नहीं.'

फिर उसे लीडरों पर गुस्सा आने लगा था. सालों को बोलना तक नहीं आता. भाषण देने खड़े हो जाते हैं. हड़ताल के शुरू-शुरू में वह मीटिंगों में गया था. एक दो-बार जुलूस में नारे भी लगाये थे, पर फिर उसने जाना छोड़ दिया था. उसे लगने लगा था, यह सब बकवास हो रही है. एक-दो बार उसे अपने आप पर इस बात के लिए खीझ भी आयी थी कि वह जुलूस में नारे लगाने से शरमाने क्यों लगा है. उसे मीटिंगों में जाना क्यों नहीं अच्छा लगता. फिर धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि नहीं जाकर वह ठीक ही करता है. पहले वह ख्वामखाह जोश में था. सुबह यूनियन ऑफिस गया था. शायद हड़ताल टूटने की कुछ खबर मिले. हाल में और दिनों से ज्यादा भीड़ थी. लोग झुंड बना-बनाकर बैठे थे. उसने देखा, दायीं ओर वाली मेज पर जायसवाल भाषण दे रहा था. और उसके साथ बैठे तीन आदमी चुपचाप सुन रहे थे. उसने जायसवाल को एक-दो बार फिल्मी अभिनेताओं के नाम लेते सुना. उसके सामने वाली मेज पर ही रामन की चौकड़ी जमी हुई थी.

फिर कुछ ही देर में वह वहां से उठ आया था. उसे लगने लगा था कि सब अपने आप को बहलाने की कोशिश में लगे हैं. उनका लीडर मुल्कराज भी वहीं था. उसने जब कहा था कि एक-दो दिन में ही फैसला हो जायेगा तो उसे लगा, वह भी अपने आप को बहला रहा है. फिर जब मुल्कराज ने समझौते की शर्तों की बात कही तो उसे घिन-सी आने लगी थी. पचास दिन की लड़ाई का यह परिणाम उसे बहुत बुरा लगा. उसे लगा, समझौता करना ही नहीं चाहिए, लड़ाई और चलनी चाहिए.

फिर बातों ही बातों में चौधरी ने कहा था, "यार, आज से तो अखबार भी बंद हो गया है. अखबारवाला कहता है, पहले पिछला बिल चुकाइए." उसका सिर भिन्ना गया था. उसे सुधा का बिलों को मेज पर रखने का तरीका याद आया. उसे उन्हें बिना देखे उठाकर ड्रावर में रखने का तरीका याद आ गया. वह सुधा और मोदी में हुई बातों की कल्पना करने लगा. उसे अमित का रोता हुआ चेहरा याद आ गया. उसे लगा, समझौता हो ही जाना चाहिए.

अभी पांच-सात दिन पहले की बात है. अमित ने स्कूल से घर आकर कहा था, "पिताजी, कल हमारी सिस्टर की बर्थडे है. एक रुपया मंगवाया है." और उसके मुंह से तड़ाक से निकला था, "बड़ आये हैं करोड़पति के बेटे, सिस्टर की बर्थडे पर एक रुपया खर्चेंगे." और अमित रोता हुआ चला गया था. उसे अमित का वही चेहरा याद आ गया. सुधा का चेहरा भी, जब उसने चावल न होने की बात कही थी. उसने अपने उस चेहरे की कल्पना भी कर ली, जब उसने सुधा की बात के जवाब में 'तो' कहा था और सुधा सहम गयी थी.

फिर वह यूनियन ऑफिस में नहीं बैठ सका. वह चुपचाप सीढ़ियां उतरकर नीचे चला आया. उसने कब फ्लोरा फाउंटेन पार किया, उसे पता नहीं. उसे इतना ही याद है कि एक कार ने जोर से ब्रेक लगायी थी. फिर तो उसके आगे, पीछे, दायें-बायें—सब तरफ कारें आ गयी थीं. वह घबरा गया था. उसने सामने देखा, सिगनल पर डोंट क्रास चमक रहा था. वह सड़क के ठीक बीचोंबीच खिंची सफेद पट्टी पर खड़ा हो गया. कभी अपने को एक इंच पीछे सरकाता, कभी आधा इंच आगे सरकाता. और कारें, बसें लगातार उसके आगे-पीछे से सर्र करती निकल रही थीं. फिर सिगनल ग्रीन हो गया. वह जल्दी से सड़क पार कर फुटपाथ पर आ गया. फिर उसने जेब से रूमाल निकालकर मुंह का पसीना पोंछा. फिर उसने सोचा, आज तो मर ही गये थे. फिर वह हंस पड़ा था. वैसे ही कौन-सा जी रहे हैं, उसने अपने आप से कहा था. फिर एकाएक उसके मन में आया, उस कार की ब्रेक क्यों न फेल हो गयी. उसने फिर पसीना पोंछा. पांच-सात कदम चलकर फिर पसीना.

उसका दिमाग घूम-सा गया. शायद आज-कल में समझौता हो जाये. उसे मुल्कराज की बात याद आयी.

साले, समझौता क्यों कहते हैं. निपटारा क्यों नहीं कहते. उसने सोचा. और फिर एक बार रूमाल से अपना सारा मुंह पोंछ लिया. □

● द्वारा : नवभारत टाइम्स, बंबई-400001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...अश्वमेध के यजमानों को यह अनुमान सपने में भी नहीं हो सकता कि अश्वमेध में घोड़े की जगह यदि किसी लेखक को ही छोड़ दिया जाये तो वह कैसे-कैसे करिश्मे कर सकता है...पर हमारे मथुरादास तो..आप जानते हैं दुनिया-जहान की खबर रखते हैं. लीजिए, इस मर्तबा मथुरादास की एक और बेमिसाल दिमागी कसरत का नमूना पेश है--

दास्तान अश्वमेध यज्ञ की

▣ मथुरादास

अभी एक अश्वमेध यज्ञ हुआ. कहां हुआ, यह मैं नहीं बताऊंगा क्योंकि मुझे मालूम है कि आप पहले से ही मान लेंगे, यह अश्वमेध भोपाल में हुआ. प्रतिवाद करने से कोई फायदा नहीं क्योंकि आप मानेंगे नहीं और भोपाल वाले चुप रहेंगे.

अश्वमेध एक यज्ञ है जो राजा लोग कराते हैं. इसमें पंडितगण मंत्र-पाठ और हवन करते हैं और फिर नहला-धुलाकर एक घोड़ा छोड़ दिया जाता है. घोड़े के साथ-साथ कुछ लड़ैये भी चलते हैं. अगर कोई घोड़ा पकड़ ले तो वे पहले उससे हुज्जत करते हैं फिर जरूरत हो तो मारपीट भी कर लेते हैं और इस तरह राज बढ़ता जाता है.

तो भाई राजा ने यह अश्वमेध होगा, ऐसी घोषणा कर दी. राजा घोषणा कर दे तो मामला बहुत आसान हो जाता है. प्रबंधकों को बड़ी सुविधाएं मिल जाती हैं मसलन याज्ञिक स्वयं प्रस्तुत हो जाते हैं. वे न केवल मंत्रपाठ करते हैं बल्कि स्तुतिपाठ के लिए भी तत्पर रहते हैं. कभी-कभी तो घोड़ा भी स्वयं ही आ जाता है कि मुझे नहलाओ-धुलाओ और छोड़ो.

तो, भोपाल (माफ करना भाई, यह नाम तो गलती से निकल गया, मेरा मतलब किसी एक राज्य से था) में एक बार राजाज्ञा हुई कि वहां भी अश्वमेध किया जाये.

इस दिव्य काम के शुरू होने में और कहीं कोई कठिनाई नहीं हुई बस सिर्फ एक जगह मामला गड़बड़ा गया. अश्वमेध के लिए याज्ञिक मिल गये यहां तक कि ब्रह्मा पद के लिए निर्मल नाम भी मिल गए, बस घोड़ों ने इनकार कर दिया. घोड़ों का कहना था कि इस दिग्विजय के नाम पर उन्हें मुठभेड़ में मार गिराने का षड्यंत्र भी हो सकता है. वह न भी हो तो यज्ञ के समापन में घोड़े को मारना ही होता है. उनका कहना था कि मलखानसिंह दिग्विजय के बाद वही माला पहने और फोटो खिंचाकर रेस्टहाउस जाये और बेचारा घोड़ा माला पहनने के बाद मारा जाये यह उन्हें स्वीकार नहीं है.

यह बड़ी टेढ़ी समस्या थी. राजाज्ञा थी तो अश्वमेध तो होना ही था पर घोड़े का क्या किया जाये!

शासन की यह परंपरा रही है कि किसी भी समस्या के सामने आने पर पहले विचार-विमर्श होता है. वह हुआ. प्रसार समिति बनी फिर सलाहकार समिति बनी. यह तो गनीमत थी कि यह अश्वमेध में घोड़े के इंकार भर का सवाल था. अगर कहीं बांध टूटने लगता और गांव डूबने लगते तो पहले एक अध्ययन दल बनता, फिर संसदीय समिति बनती. इसके बाद विभागीय जांच दल भी बनता. विभागीय जांच दल के बाद विचार-विमर्श, प्रवर-समिति और सलाहकार समिति बनती. इन प्रक्रियाओं से गुजरकर पहले फाइल तैयार होती.

लेकिन यह मामला घोड़े का था इसलिए सिर्फ एक विचार समिति बनी. लंबे बहस मुबाहिसे के बाद इस समिति ने फैसला दिया : घोड़े के बजाय किसी और को दिग्विजय के लिए छोड़ा जाये.

जाने किन बत्तमीज क्षणों में सरकार ने यह फैसला किया कि दिग्विजय के लिए घोड़े के बजाय किसी लेखक को छोड़ दो.

वैसे मुझे इस फैसले के पीछे एक साजिश छुपी महसूस होती है. फैसला करने वालों का यह विश्वास होगा कि घोड़ा क्या, लोग गधा या कुत्ता भी पकड़ ही लेते हैं पर लेखक को पकड़ेगा कोई नहीं.

लेखक को घोड़े की जगह प्रयोग में लाने के बहुत से व्यावहारिक लाभ भी हैं. उदाहरण के लिए घोड़ा छोड़ा जाये तो वह दौड़ेगा, लेखक अधिक चतुराई बरते तो चांदनी चौक से वापस आ जाये और कह दे, उसने दिग्विजय कर ली. घोड़ा छोड़ा जाये तो पकड़ने के लिए कोई भी तैयार हो जाएगा. अक्सर लेखक छोड़ने पर लाभ यह है कि उसे पकड़ता कोई नहीं है. भोपाल से चला लेखक बाइज्जत भोपाल लौट सकता है.

घोड़े में एक और असुविधा होती है. आप घोड़ा छोड़िए तो उसके साथ लड़ने-भिड़ने के लिए कुछ सेना भी भेजिए. लेखक के साथ यह जरूरी नहीं है. अक्सर वह घोड़ा और फौज दोनों का काम अकेले ही निभाता है. उसे कोई नहीं भी पकड़े तो भी वह लड़भिड़ कर आ सकता है. लड़ने भिड़ने में ज्यादा तेज न हो तो अपनी ऐसी हुलिया बनाकर वापस आ सकता है कि आपको लगे वह बहुत लड़ा होगा.

घोड़ा थोड़ा-सा मंहगा भी पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है. यानी नस्ल अच्छी हो तो घास ही नहीं-चने भी खाने को मांगेगा. लेखक बगैर चने के भी बखबी काम चला सकता है. घोड़ा अगर अश्वमेध के लिए छोड़ा गया है तो वह बीच में और कुछ नहीं करेगा यह जान लीजिए. लेकिन लेखक इतना जड़ नहीं होता. अगर वह कवि है तो रास्ते में कुछेक कविताएं अश्वमेध पर जरूर लिखेगा. समीक्षक है तो गोष्ठी भी करवा जायेगा. सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह इस शुभ-यात्रा और गोष्ठी प्रसंग की रपट करीब-करीब हर अखबार में फोटो सहित स्वयं भेजेगा.

अश्वमेध के यजमानों को कभी-कभी इस बात का अनुमान भी नहीं हो सकता कि अश्वमेध में छोड़ा लेखक कैसे करिश्मे कर सकता है ऐसे करिश्मे घोड़ा कभी नहीं कर सकता...उदाहरण के लिए अश्वमेध की दिग्विजय यात्रा को वह कोई नयी परिकल्पना दे सकता है जैसे वह इसे 'जय हनुमान यात्रा' या 'जय वराह यात्रा' का रूप दे सकता है. इस तरह वह दिग्विजय में अपने साथ और भी लेखक शामिल कर सकता है. यानी यज्ञस्थली तक वापस आते-आते पूरे अखिल भारतीय सम्मेलन लायक बंदे इक्ट्ठा कर लायेगा.

सरकार की जो विचार मंडली बैठे वह इन सभी पहलुओं पर विस्तार से विचार करेगी. सरकार को अपनी सिफारिशें भेजते हुए सावधानी के तौर पर समिति कुछ खतरों की तरफ भी ध्यान दिलाएगी.

उदाहरण के लिए एक बड़ा खतरा यह हो सकता है कि लेखक दिग्विजय भोपाल के लिए करे और तमगा खुद पहन ले. घोड़ा ऐसा कभी नहीं करता. एक खतरा और भी होता है. लेखक दौड़ना तो शुरू करेगा अश्वमेध के लिए लेकिन मुंह कर लेगा भारत-भवन की तरफ. फिर आप कितना भी हांकने की कोशिश करें वह वहीं पहुंचकर दम लेगा. अगर ज्यादा जोर-जबर्दस्ती की तो भारत भवन नहीं जायेगा, निराला सृजन पीठ की तरफ चल देगा. इससे भी भारी खतरा तब उपस्थित हो सकता है जब घोड़े छोड़े जाने के बाद मालूम हो लेखक की जेब में सूरीनाम या फिजी के किसी संस्थान का निमंत्रण पत्र था जिसे लिए हुए वह सीधा आई.सी.सी. आर. जा घुसे और जब तक कोई कुछ समझे वहां से राह खर्च बटोरता हुआ हवाई अड्डे जा पहुंचे. आजकल विदेश-यात्रा का बड़ा जोर है. साहित्य साधना बिना विदेश गये पूरी नहीं होती. जीवन बड़ा अधूरा-अधूरा-सा रहता है.

पिछले दिनों एक साहित्यकार मिले. बहुत दुखी थे. बोले, 'मित्र देखो साहित्य की बड़ी दुर्दशा है.'

'सो तो मैं समझ रहा हूं.' मैंने कहा.

'आप समझते हैं तो कुछ करते क्यों नहीं?'

'क्या करूं बंधु?'

'विदेश हो आइए. मैंने अपने कुछ मित्रों को विदेश में खत लिख दिए हैं.' वे बोले, 'वे अवश्य किसी संस्था के बुलावे का खत भिजवाने में सफल हो जायेंगे. खत आ जाये तो सांस्कृतिक कार्य-विभाग से किराया पा लेना मुश्किल नहीं है.'

योजना बहुत सही है. विदेश जाकर लेखक अपने को बड़ा सफल-सा हुआ पाता है. एफिल टावर देखते हुए लंदनपुल पर झुके हुए या लूव्र की तस्वीरों पर गौर करते हुए अगर कुछ फोटो खिंच जायें तो साहित्य और रचनात्मकता सार्थक हो जाती है. प्रेमचंद या निराला की तस्वीरें हैं मगर या तो बनारस की कोठरी में लेटे हुए या दारागंज में टहलते हुए. आप कल्पना कीजिए मुक्तिबोध बकिंघम पैलेस के बाहर खड़े होकर फोटो खिंचवाते तो आज हम उन्हें कितने सम्मान से देखते.

खैर यह तो विषयांतर था. लेखक को इसमें दोष भी नहीं दिया जा सकता. हिंदुस्तान में लेखक की सचमुच बड़ी दुर्दशा होती है. विदेश में उसे दुभाषिया गोरी सुंदरी मिलती है जो साथ बैठकर बीयर पीती है. हिंदुस्तान में उसे ज्यादा से ज्यादा ग्राम-प्रधान मांगीराम मिलेगा जो पूछेगा, तू के करै से?

ऐसे में लेखक और साहित्य की दशा कैसे ठीक रह सकती है?

अब सुझाव समिति द्वारा सुझाये जाने वाले आखिरी खतरे का जिक्र करके बात खत्म करूंगा. समिति की दृष्टि से अंतिम बड़ा खतरा सरकार के लिए सचमुच ही बड़ा खतरा होगा. यानी लेखक कुछ दिन तो यह समझेगा और दूसरों को भी समझायेगा कि अश्वमेध साहित्य के भले के लिए है. बाद में भेद उगल देगा. . .अजी क्या बात करते हैं साहब, अश्वमेध से साहित्य का क्या होना है? यह तो सिर्फ आयोजकों का भला करेगा.

यह सच है घोड़ा भेद नहीं खोलेगा. इसलिए 'वहां' आखिरी फैसला घोड़ों के पक्ष में ही हुआ. □

परिस्थिति का जहर

▣ ज्ञानदेव तिर्यगधार

जोर से धमाका हुआ और रेल के डिब्बे पटरियों से उतरने लगे. चीख-पुकार मच गयी.

गांव के लोगों ने आवाज सुनी. कुछ लोग दौड़ पड़े. वे फर्स्ट क्लास कंपार्टमेंट की तरफ भागे. गांव वालों ने उन्हें लूटना शुरू कर दिया.

वह भी बुरी तरह लुट चुका था. उसकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि वह अब क्या खायेगा?

तभी उसकी नजर डिब्बे के अंदर खिड़की के पास एक महिला पर गयी. वह दबी पड़ी थी और बेहोश थी.

उसकी नजर महिला के गले में लटके नेकलेस पर पड़ी. कुछ पल बुत-सा बना वह कुछ सोचता रहा. अचानक सहायता करने की मुद्रा में महिला की तरफ बढ़ा. झटके से उसने नेकलेस खींच लिया और जेब के हवाले कर अन्यमनस्क भाव से आगे बढ़ गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवाबाज चाहे खतरनाक से खतरनाक मुहिम पर क्यों न जा रहा हो . . . हरदम हंसता रहता है ताकि उसके हमसफर उसके साथ विश्वासपूर्वक जा सकें . . . लेकिन यह हंसते रहने की हिम्मत आखिर उसे मिलती कहां से है?

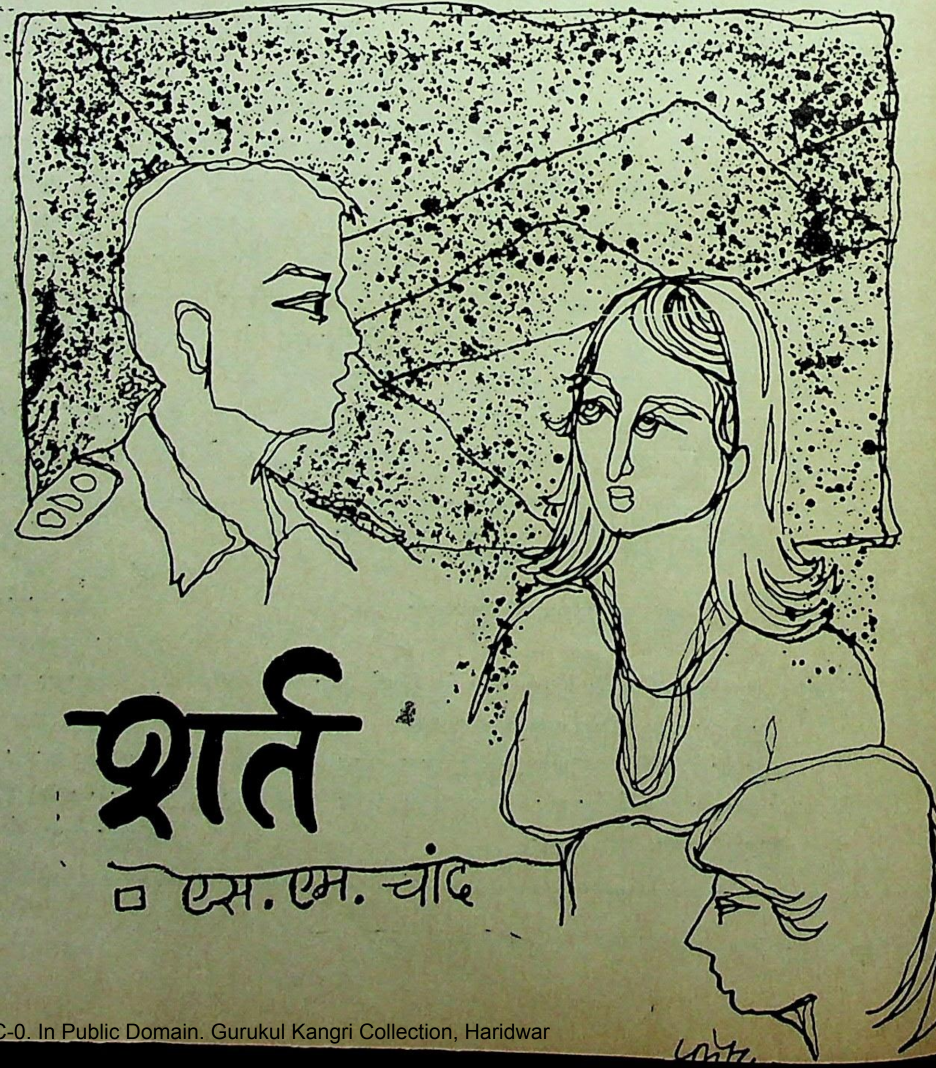

शर्त

□ एस. एम. चांद

पहाड़ों और समुद्र के ऊपर आकाश में लड़ाका वायुयान गरज रहे थे. रक्तिम युद्ध जारी था. वायु सेना ने एक गुप्त हवाई अड्डा बना रखा था. गुप्त हवाई अड्डे की भूरी इमारत का पिछला द्वार खुला, सातों पायलट तारकोल की सड़क पर अपने चमकीले बूट बजाते हुए बाहर आये. कैप्टन होम्ज ने अंदर एक चुटकला सुनाया था. सब अभी तक हंसी से बेहाल हो रहे थे. एक घंटे बाद उन्हें अपने-अपने हवाई जहाज लेकर उड़ जाना था.

कैप्टन गेरी स्वयं को अभिनेता गेरी कूपर का यथार्थ उत्तराधिकारी समझता था. उसकी नजर एक लड़की पर पड़ी, लड़की की सफेद कार दूर सड़क पर धूप में चमक रही थी. सुर्ख परिधान के कारण लड़की पर लाल-लपट का भ्रम हो रहा था. कैप्टन गेरी ने पायलट चार्ली से कहा. . . "चार्ली! लड़की!" चार्ली संजीदा सूरत बनाये खड़ा रहा. हवाबाजों ने कहकहा लगाया, गेरी ने फिर कहा, "चार्ली भागो! एक लड़की कार में बैठी है, तुम्हारा जीवन घोर संकट में है."

चार्ली ने कहा, "क्या मैं लडकियों से डरता हूं!"

"नहीं, नहीं, मि. जेम्सबांड!" कैप्टन ग्रीन ने कहा, "हम तो केवल तुम्हारी सुरक्षा के विचार से . . ."

"बकवास बंद करो." चार्ली गुर्राया.

"अच्छा!" कैप्टन गेरी ने मुस्करा-करें पूछा, "क्या तुम जाकर उस लड़की से बात कर सकते हो? मेरा मतलब है बेहोश हुए बिना!"

चार्ली सबको क्रोधित नजरों से घूरता रहा, उसे लड़कियों के मामले में बेवकूफ और डरपोक समझा जाता था. गेरी ने कहा; "बहुत अच्छा चार्ली. आज तुम्हारी बहादुरी की परीक्षा हो जाये, क्या विचार है! पिछले आठ दिनों में तुम शत्रु के ग्यारह वायुयान गिरा चुके हो, अब देखना यह है कि तुम एक लड़की का सही निशाना ले सकते हो या नहीं!" सब जोर से हंसे.

चार्ली ने दूर कार में बैठी हुई लड़की की ओर गौर से देखा. कार की छत खुली हुई थी. तेज हवा से लड़की के काले बाल उड़ रहे थे. सुनहरी धूप में लड़की जंगल में खिला हुआ फूल मालूम हो रही थी. कैप्टन गेरी ने चार्ली को कुहनी मारी, "तुम उससे बात करके दिखाओ, मैं तुम्हें दस डालर दूंगा."

होम्ज बोला, "और अगर डांस या डिनर पर निमंत्रित कर लो तो मैं बीस डालर दूंगा!"

ग्रीन ने उसका कंधा थपथपाया, "मेरी पेशकश सबसे बड़ी है, तुम उसका चुंबन ले के दिखाओ, मैं पचास डालर दे सकता हूं, नकद, इसी वक्त," उसने घड़ी पर नजर डाली, "हमारी उड़ान में अभी पचास मिनट बाकी हैं."

"ठीक है!" चार्ली ने मुट्ठियां भींच लीं, "मैं आज तुम सबका दिमाग दुरुस्त कर दूंगा." उसने अपने बाल उंगलियों से संवारे और कार की तरफ रवाना हो गया.

वह एक आकर्षक नौजवान था—नीली आंखें, भूरे बाल. नौजवानी में ही उसका सीना तमगों से सज गया था. हर मोर्चे पर उसके कारनामे शानदार रहे थे. वह देश की वायुसेना का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण अफसर था. आकाश में वह लड़ाका वायुयान चलाता था और धरती पर एक विजेता की तरह चलता था. कम से कम कार तक वह एक विजेता की तरह गया. मगर वहां पहुंच कर अचानक उसकी हिम्मत जवाब दे गयी. उसने मुड़कर कनखियों से पीछे देखा. उसके साथी आगे जाने का इशारे करने लगे. चार्ली समझ गया कि वह जाल में फंस चुका है, निकलने की कोई राह नहीं सूझ रही थी. उसने कार के नजदीक जाकर लड़की से कहा, "क्षमा कीजिएगा. . ."

लड़की मुस्करा उठी, "हैलो केप्टन!"

चार्ली को भान हुआ कि वह कितनी बड़ी मूर्खता कर बैठा है. उसने कुछ कहने की कोशिश की किंतु शब्द उसका साथ छोड़ गये. वह डिनर या डांस का निमंत्रण कैसे दे सकता था, और चुंबन? वह कंपकपा के रह गया. वार्तालाप के लिए कोई विषय उसके जेहन में न आया. वह बेबसी से लड़की को देखता रह गया. लड़की ने दूर खड़े हवाबाजों पर नजर दौड़ायी. सबका हंसी से बुरा हाल था, दो पेट पकड़कर जमीन पर लोट-पोट हो चुके थे. लड़की ने मुस्कराकर चार्ली की तरफ देखा. चार्ली झेंप से होंठ काट रहा था. लड़की ने पूछा, "कैप्टन! क्या कोई शर्त लगाकर आये हो?"

चार्ली का चेहरा सुर्ख हो गया. उसने बड़ी मुश्किल से कहा, "हां, मगर, मगर आपको कैसे मालूम हुआ?"

"मैं सैनिकों को अच्छी तरह जानती हूं." लड़की हौले से मुस्करायी, उसके गुलाबी सफेद चेहरे पर सफेद चमकदार दांतों की पंक्ति बहुत भली लग रही थी, "तुम सैनिक अड्डे से आये हो ना?" चार्ली की हिम्मत बहाल होने लगी. अजीब लड़की है, उसने सोचा, नाराज नहीं, बल्कि हंसकर बात कर रही है. हो सकता है डांस या डिनर का निमंत्रण स्वीकार कर ले.

"एक बात बताओ," लड़की की मधुर आवाज उभरी, "अंदर वायु-सेना का जो गुप्त अड्डा है, वहां द्वार पर वह काला बोर्ड अभी तक लगा हुआ है या नहीं, जिस पर लिखा है इस गेट से संसार के श्रेष्ठ पायलट गुजरते हैं."

चार्ली हैरान रह गया, "मगर आप. . . आपको कैसे मालूम हुआ? क्या आप वहां जा चुकी हैं?"

लड़की खामोश रही. झील पर नहाने और शोर मचाने वाले बच्चों में से एक पांच वर्षीय बालक भागता हुआ आया. वह नेकर पहने हुए था. निकट आके वह रुक गया और चार्ली की वर्दी पर लगे हुए तमगे हैरानी से देखने लगा. लड़की ने कार से एक तौलिया बच्चे की तरफ उछाल दिया. बच्चा तौलिया से बाल और शरीर रगड़ने लगा. चार्ली ने लड़की से मालूम किया, "यह आपका भाई है?"

▣ एस.एस. चांद

▣ शिक्षा—एम.ए., एल.एल.बी.

लड़की ने एक हाथ स्टियरिंग पर रख दिया. चार्ली को उसकी उंगली में सुनहरी अंगूठी नजर आयी. लड़की ने गर्व से बताया, "यह मेरा बेटा है." उसने लड़के को संबोधित किया, "जिम्मी! कैप्टेन को हैलो कहो, बेटा!"

"हैलो!" जिम्मी ने तौलिये से सिर रगड़ते हुए कहा, सिर रगड़कर उसने चार्ली की वर्दी पर नजर डाली, "कैप्टन पता है, मेरे डेडी भी जहाज उड़ाते थे."

चार्ली का दिल गले में आ गया. उसने झेंपते हुए लड़की की तरफ देखा, "क्या आपके पति भी पायलट थे?"

"हां!" लड़की ने एक झटके से अपने काले बाल चेहरे से हटाये. . . "सात साल पहले की बात है, वह भी इसी हवाई अड्डे पर नियुक्त था, वह भी ऐसी ही वर्दी पहनता था और इसी विश्वास से चलता था," उसके स्वर में कंपकपाहट थी, "उन दिनों मेरी उम्र अट्ठारह वर्ष होगी. फिर हमने शादी कर ली. एक दिन वह वीएतनाम के युद्ध मोर्चे पर लड़ने भेज दिया गया. जब उसने अपने चमकीले वायुयान से आखिरी बार मुझे देखकर हाथ हिलाया था, उसके चेहरे पर मुस्कराहट थी. वायु सेना की परंपरा के अनुसार उसने एक बार मुझे बताया था कि हवाबाज, चाहे खतरनाक से खतरनाक मुहिम पर जा रहा हो, हंसता रहता है ताकि साथ जाने वाले विश्वास के साथ उसके साथ जा सकें और अलविदा कहने वाले आशा से विदा कर सकें. यह कैसी अजीब परंपरा है कैप्टन!" उसने उंगली से अपने आंसू साफ किये, "अंतिम समय की हंसी से क्या होता है, क्या वापसी की आशा बंध जाती है? या जुदाई का दुख कम हो जाता है?"

चार्ली ने एक हाथ कार के दरवाजे पर रख दिया, "मुझे अफसोस है."

"ठीक है." लड़की आंसू पोंछकर धीरे से मुस्करायी. चार्ली को अपना दिल ढोल की तरह धड़कता महसूस हुआ. "मैं और जिम्मी अब इतमीनान से जिंदगी गुजार रहे हैं. क्यों जिम्मी! ठीक है ना?"

"यस, मम्मी! यस." जिम्मी ने अपनी नेकर ठीक की, "हम बहुत मजे करते हैं." वह दरवाजा खोलकर कार में बैठ गया.

लड़की ने घड़ी देखी. "कैप्टेन तुम्हारी उड़ान का समय होने वाला होगा. तुम्हें निश्चय ही किसी मुहिम पर जाना है. तुम्हारे साथी तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं." वह उसे गौर से देखती रही, फिर मुस्करायी, "मैं नहीं जानती, तुम क्या शर्त लगाकर आये थे, किंतु तुम्हें असफल नहीं जाना चाहिए. निकट आओ, आ जाओ. . ."

चार्ली झुककर लड़की के निकट हो गया. लड़की ने एक हाथ उसकी गर्दन में लपेटा और उसके होंठ चूम लिए. "खुश रहो कैप्टन! तुम एक मुहिम पर जा रहे हो, काश! सफल, विजयी होकर लौटो." इंजन स्टार्ट हुआ, कार आहिस्ते से आगे बढ़ गयी. □

• एडवोकेट हाई कोर्ट, लोहिया बाजार, ब्यावर (राज.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावी बयान करता है. . .

पुराने किस्से–'किस्सा चहार दरवेश' के दरवेश लोग, जब आपस में एक दूसरे के अहवाल कह-सुन चुके, और चाय पीने लगे तो एक नया दरवेश भी कहीं से आ टपका जो एक अधमैली बुशशर्ट और पैंट पहने हुए था. चेहरे पर दिन के साढ़े बारह बजने के आसार नुमायां थे, हालांकि वह वक्त पांच बजे शाम के लगभग का था. बदहवासी छायी हुई थी, वह जबर्दस्ती उनकी चाय में शामिल हो गया.

इस पर, पहले दरवेश ने फरमाया, "ऐ पीरे नेकसूरत इंसान! तू भी शक्ल से दरवेश ही लग रहा है, वैसे पोशाकों में फर्क है. हम लोग आपस में एक दूसरे के किस्से कह-सुन चुके अब तू बयान कर कि कौन है, कहां से आया है, कहां जा रहा है, कि हमारे कान तरस रहे हैं. . .

पांचवें दरवेश ने उठकर बारी बारी से चारों दरवेशों की दाढ़ियां चूमीं और सामने रखे चाय के प्याले से एक जोरदार घूंट लेकर, जेब से चार मीनार की डिब्बी बाहर निकाली.

जब, चारों दरवेश एक-एक सिगरेट खींच चुके तो पांचवें दरवेश ने अपने साथ सब की सिगरेटें सुलगायीं. घुटनों के बल दो जानू होकर बैठा और बड़ी दर्दनाक आवाज में बोला, "साहबानो! सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूं, उस सब के सिरजनहार के हुजूर में, जिसने हम सब को बनाने की जहमत उठाई है, और यहां ला इकट्ठा किया है.

"भाइयो, जैसा कि आप जानते ही हैं, असली किस्से में तो आप चार ही दरवेश थे, यह सेवक तो आपके बीच गोया जबर्दस्ती घुस आया है. आप पूछेंगे, ऐसी मदाखलत बेजा क्यों, तो खादिम अर्ज करता है, कि इस नये जमाने में सिर्फ आप चारों से काम नहीं चलता. इस जमाने के नुमाईंदे के तौर पर, आप को मुझे भी मंजूर करना ही होगा.

"अब, यह खाकसार अपनी दर्दनाक कहानी बयान करता है, कान खड़े कर सुनें.

"ऐ मेरे प्यारे हम वतनो! यह जो हमारा मुल्क हिंदुस्तान है, जिसे भारत कहते हैं, और संविधान के हिसाब से जो

▣ चंद्रमोहन प्रधान

किस्सा पांचवें दरवेश का

असली किस्से में तो चार ही दरवेश थे फिर यह पांचवां कहां से और क्यों आ टपका–तो बयान कर रहा है यह पांचवां दरवेश स्वयं कि उसे क्यों आना पड़ा और कि क्यों हमें इस पांचवें को भी मंजूर करना होगा. . .

'इंडिया–दैट इज भारत' के तौर पर हमारे रहनुमाओं द्वारा मंजूर किया गया है, खादिम का जन्म इसी मुल्क में पूरब के इलाके में एक बड़े अमीर और मशहूर खानदान में हुआ है. मैं अपनी खुशी से पैदा नहीं हुआ, वरना. . ."

पांचवें दरवेश ने आगे कहना जारी रखा, "अजीजो, खैर में पैदा हो गया, लिहाजा अब यह जिक्र छोड़ें तो, बचपन से ही अपना मिजाज आशिकाना था. हर तरह के आराम आसाईश में पला, और परवान चढ़ा तो. . .

'संभाला होश तो मरने लगे हसीनों पर. . .' की डगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

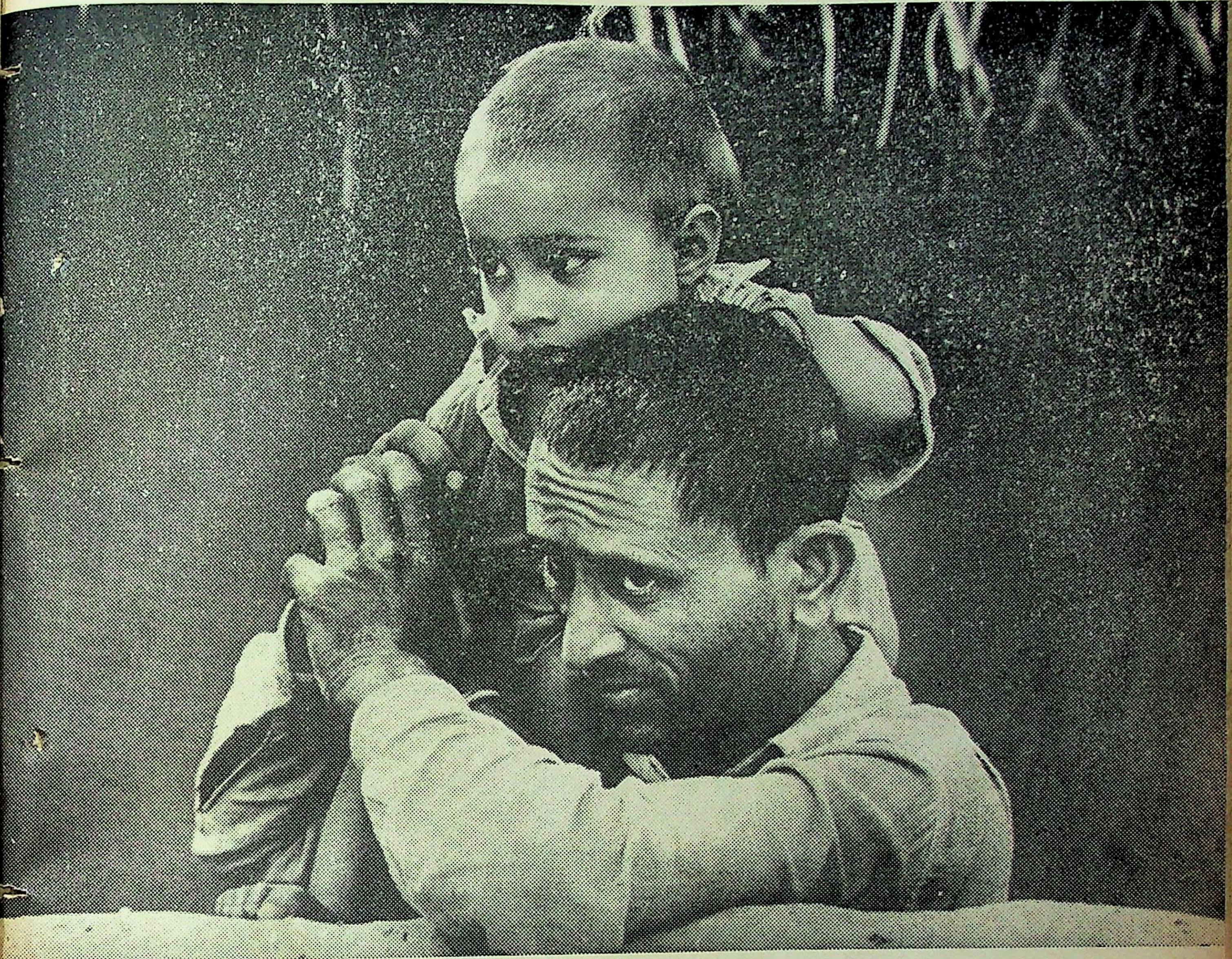

तस्वीर बोलती है

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, सिर्फ पोस्टकार्ड पर अपने नाम-पते सहित 15 मार्च, 1984 तक इस पते पर भेज दें— **संपादक, सारिका (तस्वीर बोलती है : 350) 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमश: 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर बायें प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

छाया :

एन. त्यागराजन
6 बाबर प्लेस, नयी दिल्ली-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप 10 वर्षों में अपना धन तिगुना कर सकते हैं

सामाजिक सुरक्षा पत्र खरीदें

और अपने परिवार या अपने आश्रितों को सुरक्षा प्रदान करें
500 रु० के 1500 रु० हो जाते है
1000 रु० के 3000 रु० हो जाते हैं
18 और 45 वर्ष के बीच की आयु का कोई भी वयस्क
500 रु० से 5000 रु० तक की राशि के नए

10 वर्षीय सामाजिक सुरक्षा पत्र खरीद सकता है

पहले 2 वर्षों के दौरान दुर्घटना से और उसके बाद किसी भी अन्य कारण से निवेशकर्ता की आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर निवेशकर्ता द्वारा नामजद व्यक्ति अथवा उसका उत्तराधिकारी परिपक्व मूल्य पाने का हकदार हो जाएगा।

अपनी बचत और अपने परिवार की पूर्ण सुरक्षा सुनिश्चित कीजिए

500 रु० और 1000 रु० के दो मूल्य वर्गों में यह सभी डाकघरों में उपलब्ध हैं

अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :

1) अधिकृत एजेंट
2) जिला बचत अधिकारी द्वारा समाहर्तालय
3) आपके राज्य के राष्ट्रीय बचतों (भारत सरकार) के क्षेत्रीय निदेशक
4) राज्य सरकार का लघु बचत निदेशालय
या
राष्ट्रीय बचत संगठन,
12 सेमिनरी हिल्स,
नागपुर - 440006

davp 83/38

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खबर • धीरेंद्र अस्थाना

करीब पंद्रह मिनट की मुसलसल चुप्पी से आजिज आकर पहले ने कुछ कहने के लिए मुंह खोला तो देखा, दूसरे ने ठीक इसी क्षण उसकी तरफ कुछ कहने को मुंह उठाया था. पहला चुप हो गया. दूसरा भी चुप ही रहा.

"तुम कुछ कहने जा रहे थे?" पहले ने दूसरे को टोका.

"तुम भी कुछ कहना चाहते थे. नहीं?" दूसरे ने जवाब दिया. उसके जवाब में सवाल भी था जिसके उत्तर में पहले ने कहा, "हां! लेकिन तुम बताओ, क्या कह रहे थे?"

"कुछ खास नहीं!" दूसरे ने कंधे डाल दिये.

"फिर भी!" पहले ने उसे कोंचना जारी रखा.

"कहा न, खास नहीं. तुम क्या कहना चाहते थे?"

"मैं?" पहला चौंककर बोला, "कुछ खास नहीं!"

इसके बाद करीब ढाई मिनट तक फिर दोनों के बीच एक पथरीला मौन पसरा रहा और उसके बाद दोनों के मुंह से एक साथ निकला, "मैं कहना चाहता था कि. . ."

दोनों ने अपने-अपने वाक्य अधूरे छोड़ दिये और इस दिलचस्प संयोग पर जोरदार ठहाका लगाकर हंस पड़े.

यह किसी उदास रेस्तरां के कोनेवाली मेज नहीं, एक सरकारी दफ्तर की ऊंघती हुई कैंटीन थी जिसकी एक गंदी-सी मेज पर दोनों करीब आधे घंटे से बैठे हुए थे. वे दोनों आपस में करीब दो महीने बाद मिले थे. यह पहले का दफ्तर था और दूसरा पड़ोस के एक शहर से अपने दोस्त से मिलने आया था. मिलने का कारण यह था कि उसके पास एक खबर थी जिसे वह जल्द से जल्द पहले को सुना देना चाहता था लेकिन आधे घंटे की बैठक के बावजूद वह समय नहीं आ पाया था जिसमें उस खबर को सुनाया जा सकता.

दिक्कत दूसरी तरफ भी यही थी. दूसरा पहले से दो महीने बाद मिला था और पहले के पास उसे सुनाने के लिए एक खबर थी पर उचित मौका पकड़ में नहीं आ रहा था.

"और क्या किया इस बीच?" अचानक दूसरे ने सवाल किया. पहला घबरा-सा गया. और अपराधी-सा हो आया. उसने जल्दी-जल्दी दो महीने के जीवन का हिसाब-किताब सामने फैलाया और पाया कि उसने कुछ नहीं किया था.

"कुछ नहीं यार!" पहले की सूरत दयनीय हो आयी.

"मैंने भी कुछ नहीं किया." दूसरे ने राहत की सांस लेते हुए तपाक से जवाब दिया. उसे इस बीच लगातार यह डर सताता रहा था कि कहीं पहले ने कुछ कर न लिया हो.

"एक तो ये मौसम भी बहुत खराब चल रहा है." पहले ने सहसा ही एक तर्क को उठाकर खड़ा करने की कोशिश की.

"मौसम?" दूसरा इतनी जोर से चौंका कि उसके हाथ का चाय का प्याला छलक गया. इसमें मौसम कहां से आ गया? उसने पहले तो यह सोचा और तय किया कि पहले को दुरुस्त कर दे लेकिन फिर अपना यह विचार उसने त्याग दिया.

वे कौन से हालात हैं कि एक महत्वपूर्ण बात भी हमें निहायत फिजूल और बेमानी लगने लगती है और हम दूसरी ही तरह की फिजूल और बेमानी बातों में उलझ जाते हैं. . .?

क्योंकि उसे तत्काल ही यह खयाल आ गया कि यदि उसने पहले के इस तर्क की धज्जियां उड़ा दीं तो उसे कोई दूसरा तर्क प्रस्तुत करना पड़ेगा और दूसरा कोई तर्क उसके पास था नहीं. इसलिए उसने धीरे से कहा, "हां यार! मौसम वाकई अच्छा नहीं है." पहले की आंखें चमकने लगीं. कुछ न कर पाने का अपराधबोध उसे कम होता लगा. वह गर्दन झुकाकर चाय पीने लगा.

तभी चाय पीते-पीते दूसरे को ध्यान आया कि उसने अभी तक पहले से पारिवारिक कुशल-क्षेम का कोई समाचार पूछने की औपचारिकता भी नहीं निभायी है. वह शर्मिंदा-सा हुआ और बोला, "घर में सब ठीक है न! भाभी, बच्चे?"

पहले के मुंह का स्वाद बिगड़ गया. उसे दूसरे के बाजी मार ले जाने पर सख्त अफसोस हुआ. इतनी देर में उसे जरा भी इस बात का ध्यान नहीं आया था कि वह दूसरे के घर-परिवार के बारे में ही पूछ लेता. और अब यदि वह दूसरे के सवाल के जवाब यह प्रश्न करेगा तो स्थिति हास्यास्पद हो जायेगी. फिर भी, न पूछना तो बदतमीजी ही होगा. उसने सोचा और कहा, "घर में सब ठीक ही हैं. तुम सुनाओ, राजू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का एडमिशिन करा रहे हो इस साल?"

"करा दिया." दूसरे ने पीड़ा भरे स्वर में जवाब दिया, "आठ सौ रुपये लग गये. स्साला बच्चों को पढ़ाना भी कितना तकलीफदेह होता जा रहा है."

"आठ सौ रुपये?" पहला डर गया. उसका बच्चा भी स्कूल जाने लायक हो गया था और वह भी इस बार अपने बच्चे को स्कूल में डाल देना चाहता था.

"कौनसे स्कूल में दाखिल किया है?"

"डी. ए. वी. पब्लिक स्कूल में." दूसरे ने किंचित गर्व से कहा, "चालीस रुपये महीना बस का किराया और सत्तर रुपये महीना फीस. इस प्रकार हर महीने एक सौ दस रुपये का यह नया खर्चा जुड़ गया है बजट में. समझ में नहीं आता कि कैसे होगा. अंतिम वाक्य तक पहुंचते-पहुंचते दूसरे की आवाज का दर्प धूल चाटने लगा था.

पहला बुरी तरह आतंकित हो गया. उसे लगा, इस वर्ष तो बच्चे का एडमिशन असंभव ही है. अचानक उसे लगा कि 'खबर' बता देने का यह उपयुक्त समय है. उसने तय किया ही था कि दूसरा बोला, "भाभी की नौकरी कैसी चल रही है?"

"नौकरी?" पहला पस्त पड़ गया, "वो तो छुड़वा दी."

"क्यों?"

"यार! चल नहीं रहा था. अब दो बच्चे हैं. उनकी देख-भाल ही नहीं हो रही थी. लावारिस से हो गये थे. नौकर साले हरामी होते हैं. सोचा, पांच सौ रुपये यह कमाती है. डेढ़ सौ नौकर को देने पड़ते हैं, दो सौ उसकी अपनी मेंटिनेंस में लग जाते हैं. तो बाकी डेढ़ सौ रुपये के लिए बच्चों की जिंदगी तबाह करने में कोई तुक नहीं है."

"हां, ये तो है." दूसरे ने उसके तर्क को अपना पूरा समर्थन दे दिया. दरअसल, पहले को देख इस बीच वह भी अपनी पत्नी से नौकरी कराने की बात पर विचार करने लगा था. पहले की इस बात ने उसके मन की दुविधा खत्म कर दी और उसने तय किया कि ऐसे ही ठीक है. बीवी की नौकरी में कुछ धरा नहीं है सिवा कुछ नये तनावों के.

थोड़ी देर फिर खामोशी छायी रही और दोनों सिगरेट फूंकते रहे. फिर दूसरे ने कहा, "सोचता हूं मैं भी अपना ट्रांसफर दिल्ली ही करा लूं."

"हैं?" पहला चौंका, "मकान का क्या होगा?"

"नहीं मिलेगा?" दूसरे ने धीरे-से पूछा.

"मिल तो जायेगा पर यहां एक कमरे का रेट आजकल ढाई-तीन सौ रुपये है." पहले ने अपने दर्द को याद करते हुए कहा. वह ढाई सौ रुपये के एक कमरे में था. और उसका मकान मालिक उसे 50 रुपये बढ़ाने या मकान खाली कर देने का नोटिस दे चुका था.

"ठीक है, नहीं कराते हैं." दूसरे ने आराम से कहा और हंस पड़ा. "दिल्ली में आकर ही कौन से तीर मार लिये जायेंगे? अपना सौ रुपये का मकान ही ठीक है."

"सौ रुपये!" पहले को बहुत दुख हुआ. पूरे डेढ़ सौ रुपये कम. इसीलिए दूसरा अपने बच्चे को डी. ए. वी. पब्लिक स्कूल में पढ़ा पा रहा है. अचानक उसे लगा कि दूसरा अपना ट्रांसफर दिल्ली करा ले तो अच्छा रहे. उसे पता चल जायेगा कि दिल्ली में रह लेना ही अपने में उपलब्धि है. सहसा ही उसे ध्यान आया कि उसने बहुत कम सवाल किये हैं. वह सिर्फ जवाब देता रहा है और यह कोई बहुत अच्छी स्थिति नहीं है. उसने कई सवाल सोचे और उसे ध्यान आया कि उसने पिछले दिनों रंगमंच और मार्क्सवाद पर दो-तीन किताबें खरीदी हैं. उसने एकदम ही सवाल किया, "कुछ नया पढ़ा इस बीच?"

"नहीं यार!" दूसरा हताश हो गया. एक लंबी, दुखभरी सांस खींचकर बोला, "हमारे शहर की लायब्रेरी बहुत 'पुअर' है और जहां तक खरीदने की बात है तो बजट ने इजाजत नहीं दी. किताबें कितनी महंगी भी तो हो गयी हैं. नहीं?"

"हां!" पहले ने थोड़ा खुलकर कहा, "फिर भी इस बीच मैंने तीन किताबें खरीदीं. एक स्तानिस्लावस्की के ऊपर है और दो मार्क्सवाद पर."

"वेरी गुड." दूसरे ने झटके से कहा लेकिन उसे दुख बहुत हुआ कि पहले की लायब्रेरी में तीन नयी किताबें जुड़ गयीं. उसने घड़ी देखी. उसे आये दो घंटे हो चुके थे. वह उठ खड़ा हुआ.

"क्यों?" पहला चौंक गया.

"चलूंगा." दूसरे ने सहजता से जवाब दिया.

"तुम कुछ कहना चाह रहे थे." पहले ने दूसरे को याद दिलाया.

"तुम भी तो कुछ कहना चाहते थे." दूसरे को भी याद आ गया कि पहला कुछ कहना चाहता था.

"मेरे पास कुछ खास नहीं था कहने को. तुम बताओ क्या बात थी?" पहले ने हथियार डाल दिये. उसे लगा, दूसरे को यह बताने में कि 'जिंदगी बहुत बोझिल हो गयी है' कोई नयी बात नहीं होगी. भला यह भी कोई खबर है कि मार्क्सवादी होने के बावजूद उसकी आस्था जीवन से खत्म हो रही है. फिर, यह कितनी घटिया बात भी तो है.

"मैं भी कुछ खास नहीं कह रहा था. . ." दूसरा हकलाने-सा लगा, "मैं कह रहा था कि. . .कि . . .कुछ नहीं यार!" दूसरे ने झटके से बात खत्म कर दी. वह नहीं चाहता था कि पहले को उसके कमजोर पड़ जाने की खबर मिले. हालांकि आया वह इसीलिए था कि पहले के सामने भरभराकर ढह जायेगा और सच-सच बता देगा कि अब यह जीवन ज़ीना बहुत भारी पड़ रहा है, कि अब इस ढर्रेवादी, उबाऊ जिंदगी से उसका मोहभंग होता जा रहा है. लेकिन इस तरह कच्ची दीवार की तरह ढह जाना उचित होगा क्या? उसने अपने होठों को भींच लिया और 'खबर' को बाहर आने से रोक लिया.

पहला उसके चेहरे पर आते भावों को देखता रहा और अपने चेहरे पर हाथ फेरता रहा फिर उसने दूसरे के हाथ को कसकर पकड़ लिया और आहिस्ता से कहा, "डटे रहो यार!"

"तुम भी!" दूसरे ने अपने निचले होंठ को दातों से दबा लिया और मुड़ गया.

अपनी सीट पर बैठते हुए पहले को याद आया कि वह यह पूछना तो भूल ही गया कि वह दुबारा कब आयेगा? □

● ई. पी. टी. 52, सरोजनी नगर, नयी दिल्ली-110023.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...और भुलाये न बने

अविस्मरणीय सपने, घटनाएं, संस्मरण प्रस्तुत करता

केवल पाठकों का अपना स्तंभ

परीक्षा

▣ करीम खान

मिडिल स्कूल की कक्षाओं में पढ़ने के दिनों में हमेशा नकल करके पास होने की फिराक में रहता था. क्योंकि मैं गांव के एक प्रभावशाली व्यक्ति का बेटा था, इसलिये शिक्षक कुछ कहते नहीं थे.

ऐसे ही एक समय छमाही परीक्षा हो रही थी और मैं गणित के पेपर में किसी सवाल की नकल जल्दी-जल्दी उतारने में व्यस्त था कि एक शिक्षक हमारे कमरे में आ गये और मुझे रंगे हाथ पकड़ लिया. और प्रेम पूर्वक पीठ पर हाथ रखकर आगे ऐसी गलती न करने की हिदायत दी.

सन् 1978 में मैं हायर सेकेंडरी बोर्ड परीक्षा में एक स्कूल में पर्यवेक्षक बनकर गया. एक लड़का मेरे ही सामने बेधड़क नकल कर रहा था. मैंने उसे रंगे हाथों पकड़ लिया.

जब मैंने छात्र के पिता का नाम पूछा तो उसने जो अपने पिता का नाम बताया वह उन्हीं शिक्षक का था जिनके कठोर अनुशासन ने ही मुझे आज इस नौकरी पर पहुंचाया था और जो मेरे लिये हमेशा एक आदर्श, एक प्रेरणा के रूप में रहे.

सांझ को मैं एक छात्र से पता पूछ कर उन्हीं शिक्षक के घर जा बैठा.

मैंने उनके पुत्र की सारी घटना उन्हें सुना दी. सुनकर उन्होंने चश्मा उतारा, उनकी आंखों में आंसू थे. गंभीर पर डूबे हुये स्वर में बोले, "मुझे योगी (लड़के का नाम) ने कुछ नहीं बताया. पर आज मुझे जो आत्मसंतोष मिल रहा है वह योगी के सफल होने पर भी न मिलता." फिर थोड़ा रुककर बोले, "वास्तव में तुम परीक्षा ले नहीं रहे थे, परीक्षा दे रहे थे. जिसमें तुम उत्तीर्ण हो गये." □

मद

▣ सुधीर कुमार सिंघई

मैं अपने एक मित्र के साथ राजधानी की सिटी बस में सफर कर रहा था. बस हमेशा की तरह ठसाठस भरी थी. हमें खड़े-खड़े सफर करना पड़ रहा था.

मेरे मित्र के आगे एक नवयुवती खड़ी थी. हमारी दृष्टि भी सामान्य रूप से उसके ऊपर थी. अचानक बस ड्राइवर ने झटके से ब्रेक लगा दिया. यकायक लगे ब्रेक के कारण मेरा मित्र अपना संतुलन खो बैठा और उस नवयुवती से टकरा गया. मित्र का टकराना और युवती का पलटकर मित्र के गाल पर चांटा जमाना था कि सारी बस की दृष्टि लड़की को बहादुर और मित्र को जाहिल और नालायक सिद्ध करती नजर आने लगी.

कुछ देर बाद संयोग या पूर्वनियोजित ढंग से मित्र उस लड़की के आगे खड़ा हो गया. ड्राइवर ने अपनी आदत के मुताबिक फिर एकदम ब्रेक लगाया. इस बार मेरे मित्र से टकराने की गलती लड़की ने की. इतना होना था कि मित्र ने भी चांटा रसीद करने की अदा में हाथ उठाया और बीच में ही रोककर लड़की से बोला, "मैडम, मैं भी वही दोहरा सकता हूं जो आपने किया था, लेकिन नहीं. . . हमेशा परिस्थितियों का मतलब गलत नहीं होता है, समझीं!"

इस बार सारी बस की दृष्टि नीचे झुक गयी क्योंकि वह लड़की को जाहिल और नालायक कहने का साहस नहीं रखती थी. □

होनी-अनहोनी

▣ चंद्रकांता शर्मा

सन् 1968 की बात है. उस समय मैं 16 वर्ष की नवयौवना थी. जवानी की देहरी पर खड़ी, रंगीले सपने संजोये, उमंग भरी जिंदगी जीती हुई. सबसे बेखबर. पर मैं उन दिनों पेट की बीमारी जिगर व तिल्ली से पीड़ित थी. यहां के बहुत बड़े अस्पताल में दाखिल होना पड़ा. एक मास तक छोटे-छोटे टेस्ट चलते रहे. हार कर एक दिन डाक्टर से मैंने कह भी दिया कि मैं तंग आ चुकी हूं मुझे बिना इलाज के ही छुट्टी दे दीजिए. पर कहां, मुझे दिलासा दे दिया गया कि बस एक आखिरी टेस्ट बाकी है. एक दो दिन में दवाई शुरू कर दी जायेगी. बस वही आखिरी टेस्ट मेरी जिंदगी के बहते हुये प्रवाह को रोक गया. उस टेस्ट में मेरी दाहिनी बाजू के मध्य से एक मांस का टुकड़ा काटकर, उस जगह को सुन्न करके, एक बारीक-सा तार डाला गया जिससे पता लगना था कि मेरे जिगर व तिल्ली कितने इंच बढ़े हैं. आपरेशन करना पड़ेगा या दवाई के सेवन से ही ठीक हो जायेंगे.

रात दिन की कोशिशों के बावजूद डाक्टर मेरा हाथ न बचा पाये. मैं मानसिक रूप से विक्षिप्त हो गई. मोटी पट्टियां बांधकर कई दिन मुझे झूठा दिलासा दिया गया कि तुम्हारा हाथ तुम्हारे साथ ही है, नहीं काटा गया. पर कड़वा सच मेरे संग था जो उम्र भर रहना था. फिर कब तक अपने मन को झूठी तसल्ली देती. फिर धीरे-धीरे वार्ड में ही उल्टे हाथ से लिखने का अभ्यास किया और वहीं पर नौकरी की प्रार्थना की. तब से चौदह साल हो गये वहीं पर क्लर्क के पद पर कार्यरत हूं. □

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लवर्स

• सुरेंद्र अरोड़ा

ड्यूटी रूम में मेज के नीचे पैर फैलाये ऊंघती हुई नर्स गीता को मेट्रन ने झकझोर दिया, "उठो मैन, इलेवन थर्टी हो गया. ओ. टी. से पेशेंट्स आने का टाइम हो गया. तुम इधर सो रहा है. रात में क्या करता रहता है! क्विक!"

और वह हड़बड़ा कर उठी और अपने फ्रॉक की सलवटों को आगे से, ऊपर से नीचे तक हाथ फेरकर ठीक किया, फिर पीछे हाथ फेरा. कैप के बालों में लगे पिनों की जांच की. एक क्षण को मेट्रन की ओर कुछ ऐसी नजर से देखा, मानो कह रही हो, बकती रहती है. और जेब से पेन निकालकर सामने मेज पर पड़े रजिस्टर को खोला. उसके पन्ने पलटे, फिर सिर उठाया और कलम को होठों पर रखकर मेट्रन से पूछा, "इंचार्ज, आज क्या तारीख है?"

"लो, कर लो बात! मिसी बाबा को डेट ही नहीं मालूम! तुम कैसा आदमी हो मैन. रोज हमसे डेट पूछता है. हर बात भूल जाता है. थर्टी का मेडिसिन थर्टी वन को दे देता है और ट्वेंटी का ट्वेंटी फाइव को! कभी खुद भी मरेगा. हमको भी मरवायेगा. ओ गॉड, आज कितना साल से तुम सर्विस कर रहा है, पर डेट पूछने का हैबिट तुम्हारा आज तक नहीं गया. एक बात बोलूं मिसी बाबा, कहीं अपने हस्बेंड को तो नहीं भूल जायेगा. उसकी जगह. . .और मैट्रन की विशाल देह-यष्टि में से उसके मोटे-मोटे पुते हुए होंठ शरारत से मुस्करा उठे थे.

"ओ इंचार्ज! तुम बहुत नॉटी हो. क्या करूं, कुछ याद ही नहीं रहता. बताओ ना, आज क्या डेट है!" उसके स्वर में एक षोडषी कन्या की अबोध जिज्ञासा भरा नटखटपना झलक रहा था. फिर एकाएक उसने अपनी नीली-नीली आंखों को फैलाते हुए और अपना बायां पंजा दिखाते हुए शीघ्रता से खुद ही उत्तर दिया, "इंचार्ज, मत बताना! मुझे याद आ गया. आज तेरह तारीख है ना. थर्टींथ आफ जून! ऐम आई राइट इंचार्ज!" अब उसके अनछुए से रेशमी होठों पर एक विजय-पूर्ण मुस्कराहट भी तिर आयी थी.

"ठीक है. ठीक है. अब जल्दी से रेडी हो जाओ. सोलोमन किधर है. उसको भी बोलो, सब प्रिपेयर रखे. अभी पेशेंट लोग आ जायेगा." उसने कठोर आवाज में कहा और फिर सोलोमन को आवाज लगाई, "सोलोमन! सोलो. . ."

"जी मेम सॉब!" और सोलोमन ने अपना शेष नाम बीच में लपकते हुए जवाब दिया था और खरगोश की-सी फुर्ती से अंदर आकर दोनों हाथ आगे बांध सिर झुकाकर खड़ा हो गया था.

"देखो तो, कैसा शरीफ का माफिक खड़ा हो गया, जैसे कुछ जानता ही नहीं! अभी स्टोर से स्पिरिट ले जायेगा और उसका नौटांक बनाकर पीयेगा. कितनी बार मना किया. आनेस्टी का वास्ते नहीं तो अपना सेहत का वास्ते ही हेराफेरी छोड़ दो, पर नहीं मानता. कंट्री इज गोइंग टू डाग्स. किसी को वरी ही नहीं है. कभी स्पिरिट चोरी करेगा, कभी टिंचर! कितने पेशेंट लोग का राइट मारता है, कभी सोचा है! चोरी करना मोत बुरा बात होता. कभी रेड हैंडेड पकड़ा गया तो डिसमिस हो जायेगा. सोचा है कभी कि तब तुम्हारा बच्चा लोग क्या खायेगा." मेट्रन ने अपने दायें हाथ की चारों मोटी उंगलियां और अंगूठा मिलाकर गौतम बुद्ध की मुद्रा में अपना दांया हाथ हवा में उठा दिया और उसकी ओर घूर कर देखा.

"जी मेम साब!" सोलोमन ने उसी तरह हाथ आगे बांधे हुए बहुत धीमे स्वर में उत्तर दिया.

"जी मेम सॉब का बच्चा! देखो जल्दी से स्टोर से डिटाल का बॉटल, कॉटन का एक पैकेट और दो केक सोप के लाकर मेरे बैग में रख दो और फिर जल्दी से वार्ड में आ जाओ. और मिसी बाबा, तुम सब कुछ रेडी रखो. अभी ओ. टी. से पेशेंट लोग आता होगा. और विक्टोरिया किदर गया. तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ए मिसी बाबा, तुम किदर जाता! डॉक्टर कुमार के पास! हंग्री वुल्फ है, तुमको खा जायेगा, मत जाओ मिसी बाबा! हम तो ये लवर्स लोग से तंग आ गया. . ." अस्पतालों में डॉक्टरों और नर्सों के बीच चलते प्रेम-व्यापार का कच्चा चिट्ठा पेश करती कहानी——

लोग को अपना लवर्स से ही फुर्सत नहीं मिलता. जब देखो, कोई ना कोई उल्लू का पट्ठा डॉक्टर आकर किसी न किसी को ले जाता है." मेट्रन ने सख्त आवाज में कहा और उसकी ओर घूरकर देखा. फिर सहसा उसे जैसे कुछ याद आ गया हो, उसने वार्ड ब्वाय सोलोमन की ओर मुड़ते हुए कहा, "सी सोलोमन, भूलना नई. सब सामान स्टोर से लाकर मेरे बैग में रख देना. डिटाल, कॉटन, सोप! घर में सब फिनिश हो गया है."

"जी मेम सॉब! अभी लाया." और सोलोमन उछलता हुआ ड्यूटी रूम से निकल गया.

"ये सोलोमन कितना अच्छा लड़का है. कितना लेबर करता है. हम एम.एस. को बोलेगा, इसको नर्सिंग होम में ट्रांसफर करने को. उधर चार पैसा तो बन जायेगा बेचारे का. इदर क्या है वार्ड में! सभी फोकटवाला लोग आता है." मेट्रन ने आंखों से ओझल होते हुए सोलोमन की ओर प्यारभरी नजरों से देखा, फिर नर्स को संबोधित करते हुए पूछा, "रजिस्टर चेक कर लिया! लेटस गो टू द वार्ड! कितना केसेज है आज मिसी बाबा."

"तीन! दो अपैंडिक्स, एक गॉल ब्लैडर स्टोन के आपरेशन का." नर्स ने अपने फ्राक पर प्यार से हाथ फेरा और मेज से तीन कार्डबोर्ड उठा लिये, जिन पर टैंप्रेचर चार्ट लगे हुए थे. और वह आगे को बढ़ी ही थी कि मेट्रन की कठोर आवाज फिर उसके कानों से टकराई थी, "विक्टोरिया कहां है! व्हेयर इज. . ." और उसका वाक्य अधूरा ही रह गया था कि सामने से अपने मुड़े-तुड़े फ्राक को दोनों हाथों से नीचे की ओर खींचती हुई, झुकती हुई, जो नर्स ड्यूटी रूम में दाखिल हुई, विक्टोरिया थी.

"आ हा! वेलकम! वेलकम! आ गया हमारा स्वीट-स्वीट मिसी बाबा! देखो तो क्या हालत है तुम्हारा. सारा लिपिस्टिक सक कर लिया क्या! ओ गॉड! यही सब करने का वास्ते तुम इदर में आता. ये डॉक्टर लोग भी इन छोकरी लोग को मटन का पीस समझता. ऐसा माफिक ड्यूटी करेगा तुम लोग तो हमारा कंट्री का क्या होयेंगा. इट विल गो टू डॉग्स! ओ गॉड, हेल्प अस ऑल टू लीड पायस लाइफ!" और मेट्रन ने आंखें बंद कर ली थीं और दोनों हाथ क्रॉस की मुद्रा में अपने वक्ष पर आर-पार ले गयी थी और कहा था, "आमीन." और वह यूं ही आंखें बंद किये खड़ी थी कि एक लंबा-सा दुबली-पतली काया वाला मरीज हाथ में पतीला पकड़े, दूसरा हाथ झुकी हुई कमर पर रखे दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया था और मेट्रन की आंखें खुलने का इंतजार करने लगा था. मेट्रन ने जैसे ही आंखें खोली थीं, उसने वसे ही पूछा था, "सिस्टर, ये खिचड़ी गरम कर लूं?"

"तुमको कितनी बार मना किया ये सरकारी हीटर है. खराब हो जायेगा. खराब हो जायेगा तो इलेक्ट्रिशियन नहीं आयेगा. हमारा सब काम रुक जायेगा. तुम लोगन को इंजेक्शन कैसा लगायेगा. कितना प्राब्लम हो जायेगा. ओ गॉड! इस कंट्री का क्या होगा. इट विल गो टू डॉग्स. अच्छा कर लो! कर लो! ! कल से नहीं करना! आं!" मेट्रन ने एहसान भरी आवाज में कहा और दीवार के साथ चिपककर ऐसे खड़ी हो गयी, मानो कोई अछूत उसके पास से गुजरनेवाला हो. मरीज एक हाथ कमर पर रखे और दूसरे हाथ में पतीला पकड़े ड्यूटी रूम के अंदर आ गया और हीटर की ओर बढ़ गया. उसके अंदर प्रवेश करते ही मेट्रन ने बाहर की ओर कदम बढ़ाये ही थे कि उसने देखा, सामने मटमैले मरघिल्ले से चार-पांच मरीज हाथ में डिब्बे-पतीले लिये कतार में खड़े थे और खिचड़ी वाले मरीज का बाहर लौटने का इंतजार कर रहे थे.

"तुम सब खाना गरम करने का वास्ते खड़ा है! ओ गॉड, इस कंट्री का क्या होगा. इट विल गो टू डॉग्स! ओ माई लार्ड!" उसने पैर पटककर माथे पर हाथ मारा था, फिर पीछे मुड़ी थी और कड़कती आवाज में कहा था, "तुम लोग इदर काये का वास्ते फ्रीज हो गया. पेशेंट लोग को डॉक्टर्स का राउंड से पहले सेट करना का. उदर पेशेंट भी नहीं आया ओ. टी. से. टाइम होता. इस कंट्री का क्या होगा. . ." और उसका वाक्य सामने से आते हुए डॉक्टर वर्मा ने काटते हुए झुककर कहा था, "इट विल नाट गो टू डॉग्स! सो लांग ऐज आवर इंचार्ज इज देयर, ऐम आई राइट."

"ओ डॉक! गुड मार्निंग." मेट्रन ने झेंपते हुए जवाब दिया था और फिर सामने वरांडे की ओर देखकर जोड़ा था, "ओ डॉक यू आर ग्रेट. वो देखो, पेशेंट लोग भी आ गया." और वह इस तरह सतर्क हो गयी थी, जैसे स्टेशन पर गाड़ी आ गयी हो और वह किसी को रिसीव करने आयी हो. उसने आगे बढ़कर पहली स्ट्रेचर ट्रॉली को रिसीव किया था. फिर पीछे से आती दोनों ट्रॉलियों के साथ हो ली थी. वो नर्स, जिसका नाम विक्टोरिया था, बीच वाली ट्राली के साथ हो ली थी और उसने ट्रॉली के साथ चलते मरीज के किसी परिजन के हाथ से खून की बोतल ले ली थी, जिससे उस रोगी को ब्लड चढ़ाया जा रहा था. सबसे पिछली ट्रॉली पर सफेद चादर में लिपटे निश्चेत रोगी के साथ वो रेशमी होठों वाली नर्स हो ली थी, जिसका नाम गीता था. उसने पलकें तेजी से दो-चार बार झपकायीं थीं और फिर घड़ी देखी थी, "बारा दस!" और बुदबुदायी थी, "आता ही होगा." और आंखों को गोल-गोल घुमा करके मुस्करा दी थी और फिर जैसे कुछ याद आ गया हो, उसके दोनों होंठ गोल होकर सीटी की मुद्रा में परिवर्तित हो गये थे और उसके गोल होठों से निकला था, "यू ब्रूट!" और उसने सहसा बायें हाथ से अपनी फ्राक खींचकर घुटने के नीचे कर ली थी, जैसे कोई उसे खींचकर उघाड़ रहा हो. ऐसा करने में उसका दायां पैर बायें में उलझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था और वह गिरने को ही थी कि पीछे से उसकी कमर के गिर्द किसी ने हाथ लपेटकर उसके कमान से आधे झुक आये शरीर को सीधा किया था. दोनों की आंखें लड़ी थीं और उसने तेजी से अपने को संभालकर उससे छुड़ाते हुए कहा था, "ओ डॉक तुम." और उसने कंधे उचकाकर अपने को सीधा किया था और तेजी से ट्रॉली के साथ-साथ चलने लगी थी.

"नाराज हो." डॉक्टर ने मुस्कराते हुए मनुहार भरे स्वर में पूछा था और उसके साथ-साथ चलने लगा था.

वह बिना उत्तर दिये तेज-तेज चलने लगी थी और जल्दी से बढ़कर अगली ट्रॉली के साथ चलती हुई दूसरी नर्स के साथ हो ली थी. डॉक्टर उसके पीछे-पीछे चल रहा था. उसने कनखियों से डॉक्टर के कदमों को तेजी पकड़ते हुए देख लिया था और उसके दिल की धड़कनें तेज हो गयी थीं. धक-धक धक-धक! उसने कलेजे पर हाथ रखा था और अपने उठते-गिरते वक्ष को जोर से दबा दिया था. एक सिसकारी भरी पीर उसके कलेजे को आरे की तरह काट गयी थी. उसके दोनों कानों की लवें खड़ी होकर तिरछी पड़ती हुई धूप से गेहूं की बालियों जैसी चमकने लगी थीं, झिलमिल-झिलमिल करती हुईं. उसके कान गरम होकर इतने लाल हो गये थे कि गाल अंगारों से दहकने लगे थे. सुग्गे की नाक-सी उसकी नाक का मुहाना भी गुलाबी-सा होकर दहक रहा था. गाल, होंठ सब लावे की तरह उफन रहे थे. क्यों हो जाता है ऐसा, डॉक्टर कुमार को देखते ही. प्रायः ऐसा ही होता. जब भी डॉक्टर कुमार से उसका सामना होता तो उसकी समूची काया ही ज्वालामुखी में परिवर्तित हो जाती और उसमें जलते हुए उसे एक अलौकिक आनंद की अनुभूति होती. बड़ा थ्रिलिंग लगता उसे यह खेल! और वह आंखें बंद कर लेती उसमें महव होने के लिए, डूब जाने के लिए.

"सब ठीक है ना इंचार्ज! एनी कांपलीकेशंस!" पूछकर डॉक्टर सबसे अगली ट्राली के साथ वार्ड में प्रवेश कर गया था. तीसरी ट्राली के साथ वह रेशमी होंठों वाली नर्स गीता थी, जो वार्ड के दरवाजे पर ही ठिठक गयी थी. डॉक्टर कुमार ने अपनी काया पीछे मोड़ते हुए कुछ इस अंदाज से देखा था, मानो वह कह रहा हो,"अंदर नहीं आओगी डार्लिंग, हम क्या बुरे हैं."

जवाब मेट्रन ने दिया था, "नो डॉक. सब ठीक है. अब्भी पेशेंट लोग को वार्ड में ट्रांसफर करेगा. देन यू हैव टू टेल मी...' और मेट्रन सबसे आगे वाली दोनों ट्रालियों को लेकर वार्ड में प्रवेश कर गयी थी. साथ सिस्टर विक्टोरिया भी थी. और उसने पीछे मुड़कर तीसरी ट्राली के पास ठिठकी रेशमी होंठों वाली नर्स गीता को आदेश दिया था,"तुम इसको आगे साइड रूम में ले चलो. हम अभी आता." और फिर डॉक्टर कुमार को संबोधित करते हुए कहा था, "डॉक दोनों पेशेंट लोग को एक्जामिन कर लो. ड्रिप रेडी है. ट्वेंटी वन का ब्लड ट्रांसफ्यूजन भी है."

"ओ के! ओ-के!" डॉक्टर ने उत्तर दिया था और कनखियों से दरवाजे से बाहर जाती हुई ट्राली के पीछे चलती नर्स गीता को देखा था, फिर मुस्कराया था और वार्ड के अंदर

पितरों का तर्पण

▣ कन्हैयालाल सरस

गुरु नानक उन दिनों हरिद्वार में थे. प्रातःकाल वे स्नान के वास्ते गंगा तट पर पहुंचे. गंगा तट पर गुरुजी ने देखा—एक आदमी पूर्व की ओर जल उलीच रहा है. इसे देखकर उन्होंने उस व्यक्ति से पूछा, "यह आप क्या कर रहे थे?"

"पितरों का तर्पण कर रहा था." व्यक्ति ने कहा.

थोड़ी देर बाद गुरुजी गंगा में स्नान करके निकले और पश्चिम की ओर खड़े होकर पानी को उलीचने लगे. पास के लोगों को यह बात कुछ बेढंगी लगी. अतः उनसे लोगों ने पूछा, "यह आप क्या कर रहे थे!"

"मैं अपने पंजाब वाले खेतों को पानी दे रहा हूं." गुरुजी ने मुस्कराकर उत्तर दिया.

पास ही खड़े एक व्यक्ति ने अचरज भरे स्वर में कहा, "पंजाब तो यहां से काफी दूर है, वहां पानी कैसे पहुंच सकता है?"

"पितृ लोक से अधिक दूर तो नहीं; जब वहां पानी पहुंच सकता है तो पंजाब कैसे नहीं पहुंच सकता?"

लोग गुरुजी की बात समझ चुके थे. □

रुकी दोनों ट्रॉलियों के पास आकर रुक गया था. इस बीच वार्ड में खड़े दो-चार लोगों ने, जिनमें रोगी भी थे, मिलकर बारी-बारी से दोनों मरीजों को उनके बेडस पर ट्रांसफर किया था. डॉक्टर कुमार ने अचेत पड़े दोनों मरीजों को बड़े ध्यान से एग्जामिन किया था. ट्वेंटी वन के ब्लड-ट्रांसफ्यूजन की व्यवस्था की थी: कुछ क्षण बोतल में टप-टप जाते रक्त की ओर ध्यान से देखता रहा था. फिर ट्वेंटी फाइव को ड्रिप दिया था और स्टेथस्कोप जेब में डालकर जल्दी से बाहर निकला ही था कि मेट्रन ने पीछे से आवाज लगाई थी, "डॉक, ये टिकट तो कंपलीट कर दीजिए. मेडिसिन देना है."

"डोंट वरी इंचार्ज, मैं गीता को सब समझा दूंगा. दो बजने वाले हैं. आ'एम डैम हंग्री. चलो अपेंडिक्स का केस भी देख लें." और वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वार्ड से बाहर निकलकर साइड रूम की ओर बढ़ गया था. उसके कदमों में इतनी तेजी थी कि उसके पीछे-पीछे आती हुई मेट्रन हांफने लगी थी और उसका वक्ष ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे होने लगा था और उसकी सांस धौंकनी की तरह बजने लगी थी. साइड रूम में पहुंचकर मेट्रन ने डॉक्टर कुमार को पैंतीस नंबर पर झुके हुए देखकर हांफते हुए कहा था, "ओ गाड, तुम तो क्रास कंट्री से रेस लगा दिया डॉक, इस कंट्री का...ओफ!. हफ्फ! हफ्फ!..." मेट्रन अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पायी थी कि बेड नंबर छत्तीस के पास बैठी महिला ने, जो शायद उसकी पत्नी थी, साइड टेबल पर पड़े जग से गिलास में पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाला था और गिलास उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा था, "वाटर सिस्टर."

"ओ नो! हफ्फ! हफ्फ." मेट्रन का हांफना जारी था. उसने अब आधा झुककर अपने दोनों हाथ घुटनों पर रख लिये थे. डॉक्टर ने निर्विकार भाव से उसको देखा था और फिर कहा था, "इंचार्ज, थर्टी फाइव को ड्रिप लगा दिया है. पुट ए स्क्रीन. गीता कम विद हिज टिकट. आ'विल कंपलीट इट आफ्टर लंच." और उसने सामने खड़ी गीता की ओर शरारतभरी मुस्कान फेंकी थी और वह आगे बढ़ गया था. नर्स गीता भी उसके पीछे-पीछे चलने लगी थी. दोनों कमरे से बाहर निकले थे और उसने पीछे मुड़कर उसके करीब होकर उसके कान में धीरे से फुसफुसा कर कहा था, "डॉक्टर गुप्ता के बंगले की 'की' मेरे पास है. म चल रहा हूं. तुम नीचे लॉबी में मिलो."

"पर ये मोटी! . . ." उसने जवाब में बुदबुदाकर कहा था और पीछे मुड़कर भयभीत नजरों से कमरे से धीरे-धीरे बाहर निकलती मेट्रन की ओर देखा था.

मेट्रन अब सीधी हो चली थी. उसका हांफना अब कम होता हुआ लोप होता जा रहा था. वो धीरे-धीरे उन दोनों के पीछे आ रही थी. उससे आगे कुछ फासले पर चलते डॉ. कुमार ने कहा, "डोंट वरी अबाउट दिस बिच, तुम आ जाओ."

"दिन दहाड़े! यू मीन डेलाइट रॉबरी. नहीं डॉक, आज नहीं! फिर कभी सही." उसने मनुहार भरे स्वर में कहा था और टिकट को अपने वक्ष से भींच लिया था.

"मैं कुछ नहीं जानता. तुम्हें आना होगा. मैं इंचार्ज से कह देता हूं." वह पीछे मुड़ा था और उसने मेट्रन से कहा था, इंचार्ज रिलीव हर फार हाफ एन आवर." और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही आगे बढ़ते हुए उसने उसके कान के पास होंठ ले जाकर फिर धीरे से कहा था, "मैं नीचे इंतजार कर रहा हूं." और वह तेजी से लिफ्ट की ओर बढ़ गया था.

"यू क्रेजी मास्टर." वह बुदबुदायी थी और उसने दांत भींचकर मुट्ठी हवा में तान दी थी और तेजी से ड्यूटी रूम की ओर बढ़ने लगी थी कि पीछे से मेट्रन ने उसे टोका था, "ए मिसी बाबा, तुम किदर जाता. डॉक्टर कुमार के पास. हंग्री वुल्फ है. तुम को खा जायेगा. मत जाओ मिसी बाबा. हम तो ये लवर्स लोग से तंग आ गया. ओ गॉड, इस कंट्री का क्या होगा..."

मेट्रन ने एक लंबी सर्द आह भरी थी. फिर धीरे कदमों से ड्यूटी रूम की ओर बढ़ने लगी थी. गीता तेजी से ड्यूटी रूम में आयी थी. चाभियों और टिकट को दूसरी नर्स विक्टोरिया को सौंपकर लिफ्ट की ओर बढ़ी थी कि पीछे से सिस्टर विक्टोरिया की आवाज कानों से टकरायी थी, "गुड लक."

उसने मुड़कर देखा था और आंखों-आंखों में धन्यवाद दिया था. लिफ्ट के पास पहुंचते ही दरवाजा खुल गया था, जैसे उसी का इंतजार हो रहा हो.

उसने नीचे पहुंचते ही लॉबी में डॉक्टर कुमार को इंतजार करते पाया था. उनके कदम जैसे ही मिले थे, वैसे ही वह आगे-आगे चलने लगा था और वह पीछे-पीछे. यह अपने-आप हुआ था. दोनों चल रहे थे. बीच में मौन उनका साथ दे रहा था. जून की चिलचिलाती धूप में डॉक्टर कुमार ने आंखों पर काला चश्मा लगा रखा था. उसने बायें हाथ को माथे पर रख कर धूप से बचने की व्यवस्था कर रखी थी. दोनों चलते जा रहे थे, आगे-पीछे. अस्पताल में अनगिनत सिरों की भीड़ उन्हें नहीं दिखाई दे रही थी. अस्पताल का त्रिभुजाकार लॉन और पंक्तिबद्ध यूकेलिप्टस के पेड़ गर्म हवा के थपेड़ों के साथ पीछे छूटते जा रहे थे.

अब डॉक्टर गुप्ता का बंगला दीखने लगा था. डॉक्टर कुमार ने पीछे मुड़कर उसकी ओर देखा और होंठ चौड़े करते हुए विजयपूर्ण स्वर में कहा, "लो, टकलू का घर आ गया." और फाटक खोलकर उसे भी अंदर ले लिया और फिर फाटक बंद कर दिया. अब उसका हाथ उसकी कमर के गिर्द आ गया था और उसकी चाल में एक इत्मिनान आ गया था.

"शि! तुम डॉक्टर गुप्ता को टकलू कहते हो. इतने बड़े डाक्टर हैं!" उसने उसकी ओर देखकर कहा और कमर को उसकी गिरफ्त से छुड़ा लिया.

"और क्या दिलीप कुमार कहूं! टकलू इज टकलू. कम ऑन लेट्स गेट इन." और उसने आगे बढ़कर बीच के दरवाजे का ताला खोल दिया और बायां हाथ आगे बढ़ा कर झुकते हुए कहा, "कम योर मैजेस्टी." और वह अंदर आ गयी. उसने दायें हाथ को मुट्ठी का आकार देकर उसकी पीठ पर एक मुक्का जमाते हुए कहा, "यू नाटी ब्वाय."

"थैंक्स फार द काम्प्लीमेंट्स, चलिये, अंदर चलिये." और उसके कंधे थपथपाकर उसने दरवाजा अंदर से बंद कर लिया. और दोनों अंदर आ गये और एक साथ दोनों ने अपने को लंबे सोफे पर पटक दिया. इस अंदाज में, जैसे दो बच्चों को उनके माता-पिता ने सारा दिन घर में बंद रखने के बाद खेलने की अनुमति देकर बाहर भेज दिया हो.

सोफे पर बैठते ही उसने उसे अपनी बाहों के घेरे में कस लिया और अपने होंठ उसकी ओर बढ़ाये ही थे कि उसने अपने दोनों हाथ उसके होंठों पर रख दिये और कहा, "तुम्हें गर्मी नहीं लगती!"

"ओ हां, पंखा चलाता हूं." उसने कहा, जैसे सहसा उसे कुछ याद हो आया: और वह उठा और स्विच बोर्ड की ओर बढ़कर स्विच दबा दिये और दोनों पंखे एक साथ घर्र-घर्र की आवाज करते हुए तेजी से घूमने लगे. पंखे चलाकर वह आक्रमणकारी मुद्रा में उसकी ओर बढ़ा कि उसने उसे बीच में ही टोक दिया और कहा, "पानी नहीं पिलाओगे, प्यास लगी है."

"ओ येस! सॉरी-सॉरी." उसने उत्तर दिया जैसे उसे फिर कुछ याद आ गया हो और वह अपने गले में लटके स्टेथस्कोप से खेलते हुए हाल के दूसरे कोने में पहुंच गया, जहां फ्रिज पड़ा था. उसने फ्रिज खोला और एकाएक उत्साहपूर्ण स्वर में चिल्लाया, "अरे, इसमें तो बीयर भी पड़ी है. टकलू साला बहुत शौकीन आदमी है. लेट अस हैव सम." और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह फ्रिज में से दो बोतलें निकाल कर दोनों हाथों में ऊपर की ओर उठाकर पकड़े हुए ले आया और उसके सामने खड़ा हो गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं, मैं नहीं लूंगी. मुझे तो पानी..." उसने अपना फ्राक नीचे करते हुए कहा और वह सिमटकर सोफे के कोने में दुबक गयी. "कम ऑन बेबी, डोंट बी सिली. हैव इट." उसने दोनों बोतलों के कार्क दांतों में अड़ाकर ही खोल डाले. और एक बोतल उसकी ओर बढ़ा दी.

"नहीं-नहीं, कड़वी लगती है." उसने हाथ मुंह के आगे रखते हुए कहा.

"अच्छा, मैं नमकीन ले आता हूं. किचन से ढूंढ़कर." और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना अपने हाउस कोट की दोनों जेबों में हाथ डाले अंदर की ओर बढ़ा ही था कि उसे पीछे से उसकी आवाज सुनाई दी थी, "गिलास भी ले आना."

"ओ हां, वो तो मैं भूल ही गया था." और वह कुछ क्षण में ही एक हाथ में काजू से भरी प्लेट और एक हाथ में दो गिलास पकड़े लौट आया और उसके सामने खड़ा हो गया और बोला, "कुछ भी कहो, टकलू है शौकीन, देखो साले ने फ्राइड काजू भी रखे हुए हैं."

"बैठ जाओ ना." उसने कहा. अब वह आश्वस्त महसूस करने लगी थी. उसने दोनों गिलासों में बीयर डालना शुरू कर दिया था और वह एकाएक चिल्लाया था, "दैट्स द स्पिरिट हनी." और उसने उसकी कमर में हाथ डालकर उसे भींच लिया था और तब झाग में तब्दील होती हुई ढेर सारी बीयर नीचे बहने लगी थी. उसने टोका था, "क्या करते हो. देखो सारी बीयर गिरा दी. लीव मी. छोड़ दो." और उसने अपने को छुड़ा कर एक गिलास उसकी ओर बढ़ा दिया था.

उसने गिलास लेकर हवा में उठाया था और कहा था, "फार माई लव."

"फार आवर लव." उसने जवाब दिया था.

दोनों गिलास हवा में टकराये थे और बारी-बारी से दोनों के गलों से उतरने लगे थे. सहसा उसने अपना गिलास मेज पर रखा था और एक काजू मुंह में डालकर प्लेट उसकी ओर बढ़ा दी थी और उसकी आंखों में आंखें डालकर पूछा था, "डू यू लव मी हनी, क्या तुम मुझे..." और उसके हाथ उसकी कमर के गिर्द बेल की तरह लिपट गये थे. इससे पहले कि वह जवाब देती, उसके होठों ने उसके रेशमी अनछुए अधरों के द्वार बंद कर दिये थे, "ओ डार्लिंग. माई लव!" अब उसकी आंखें बंद सीपी बनी हुई थीं.

"डार्लिंग!" वह उसके कान में बुदबुदाया.

"हूं." उसने स्टेथस्कोप के घड़ी के आकार वाले निचले हिस्से से खेलते हुए संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था. उसकी आंखें बंद थीं, "तुम मुझसे बहुत प्यार करती हो!" उसने फिर उसके कान में फुसफुसकर पूछा. फिर वह रुक गया, जैसे उसे कुछ याद आ गया हो और फिर शुतुरमुर्ग की तरह गर्दन निकालकर उसने कहा, "आज तो पेशेंटस की टिकट ही नहीं बनायी! शाम को एम. एस. का राउंड है. सुनो, तुम यहां से जाकर ट्वेंटी और थर्टी फाइव को एक-एक एंपीसिलिन फाइव हंड्रेड दे देना और हां, ट्वेंटी वन को कुछ नहीं देना है. और सबके ड्रिप भी चेक कर लेना." उसने कलाई मोड़कर घड़ी देखी और वह बहुत तेजी से क्रियान्वित हो गया था. हफ्फ! हफ्फः वह हांफने लगा था. हांफता जा रहा था. उसके गले में लटका स्टेथस्कोप भी उतनी ही तेजी से हिलने लगा था, जितनी तेजी से वह. उसके इस तेज और अप्रत्याशित आक्रमण से उसकी आंखें बड़ी-बड़ी होकर फैल गयी थीं और उस हाथ से स्टेथ-स्कोप का घड़ी के आकार वाला हिस्सा छूट गया था. उसने आंखें बंद कर ली थीं और वह भी हांफने लगी थी. "हफ्फ, हफ्फ." ☐

● 67—सी, पाकेट-III मयूर विहार, दिल्ली-110091

सौदेबाजी

▣ संतोष

आजा साठ पैसे किलो...आजा...बहुत बढ़िया... आजा...आजा...साठ पसे...

उसकी आवाज दूसरी आवाजों से ज्यादा तेज थी.

इतने में एक मोटे चेहरेवाला व्यक्ति उसके पास आकर खड़ा हो गया. . .कुछ देर खड़ा रहा और फिर उसने कहा, "किस तरह दिया है?"

"बाऊजी साठ पैसे."

"आठ आने लगा."

"रेट एक ही होता है."

"लगा ले यार."

"कितना दूं?"

"दो किलो . . . फिर ठीक है न."

"लेना है तो लो, रेट एक ही है."

"तुम बेचना नहीं चाहते. . . इसे. . ."

"हम बैठे किसलिए हैं?"

"तो फिर लगा ले न."

"एक बार जो कह दिया, वह कह दिया."

"तुम तो लूट रहे हो. . .चोर कहीं के!"

"जुबान संभाल कर बोलो, कभी सब्जी खरीदी है!"

"मैं तो कई बार ले कर गया हूं, परंतु तुम्हारे जैसा कमीना नहीं देखा कोई."

"मैंने तुम्हारे जसा घटिया ग्राहक नहीं देखा."

वह व्यक्ति पास ही बैठी औरत के पास गया और पूछा, "क्या रेट है."

"बारह आने किलो."

"साठ पैसे लगा."

"कितना लेना है?"

"दो किलो."

"थैला खोल." उसने थैला खोला. औरत ने दो किलो आलू तोल कर उसके थैले में डाल दिये. वह पैसे देते हुए पास ही बैठे सब्जी वाले को व्यंग्य से देख रहा था.

"मेरी ही घरवाली है." सब्जीवाले ने कहा. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या नशा सिर्फ अय्याशी है ?"

▣ राकेश वत्स

शरीर और मन की नैसर्गिक क्षमताओं को अस्वाभाविक रूप से उत्तेजित करके भौतिक आनंद प्राप्त करने के सिलसिले को 'अय्याशी' कहा जा सकता है. अय्याशी नुकसान पहुंचाने के मामले में बहुत ज्यादा बदनाम इसलिए है कि वह आदमी को उत्तेजना देने के लिए इस्तेमाल किये जानेवाले साधनों का गुलाम बना देती है और उन का ज्वार उतर जाने के बाद पस्त, बेईमान और अपराधी. नशा उत्तेजना का सबसे बड़ा साधन है.

नशे के प्रभाव-जगत का एक जायजा उसको तैयार करने, बेचने, और कानूनी सुविधाएं हासिल करवानेवाले लोगों के माध्यम से भी लिया जा सकता है. इन लोगों का तर्क और दावा है कि शराब की बिक्री से प्राप्त होनेवाले भारी राजस्व के बिना राज्य सरकारें जोखिम में पड़ सकती हैं. . .और इससे जनहित के लिए किये जा रहे विकास के काम भी रुक सकते हैं.

जनहित का तर्क देनेवाले ये लोग नशे की मिलावट से कमाये गये काले धन से धर्मस्थलों का निर्माण करवाते हैं और इनकी पीठ पर हाथ रखनेवाले राजनेता अस्पतालों और डिस्पेंसरियों का, ताकि नश की अय्याशी में लगे लोगों के परलोक और स्वाथ्य सुधार के लिए आधार पैदा किये जा सकें. भले ही ये आधार सिगरेट के चमचमाते रंगीन विज्ञापनों के नीचे बारीक अक्षरों में लिखी उन पंक्तियों की तरह हास्यास्पद हैं, जिनमें सिगरेट के सेहत के लिए हानिप्रद होने की वैधानिक चेतावनी दी होती है.

एक तरफ कारखानों और ठेकों की अकूत वृद्धि और दूसरी तरफ न्यूज और टीवी फिल्मों में नरकंकाल दिखाकर नशे की खिलाफत आदि तामझाम सरकारी दफ्तरों के बाहर लटकी उन लाल बालटियों जैसा लगता है, जिन पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा होता है—'आग', पर उन के अंदर सूखी रेत और ठंडा पानी भरा होता है.

नशे की दुनिया का दूसरा पक्ष है—नशा करने और करवानेवाले लोगों का पक्ष. आज यह पक्ष इतना अधिक प्रबल है कि इसको समाज की समग्रता से काटकर देखना संभव नहीं है. जो स्थान किसी समय हुक्का-पानी को हासिल था, उससे कहीं बड़ा स्थान आज बीयर-शराब को हासिल है. बुद्धिजीवी वर्ग तो इसमें गले तक डूबा नजर आता है. सवाल उठ सकता है कि आखिर इसकी वजह क्या है? आज आदमी नशे की तरफ इतनी तेजी से क्यों भाग रहा है?

इस सवाल पर विचार करने के लिए कई नुक्ते हमारे सामने हो सकते हैं. एक नुक्ता यह है कि आज के अर्थ प्रधान युग में अनास्था, अविश्वास और असुरक्षा की बढ़ोत्तरी के कारण आदमी को गहमागहमी और जद्दोजहद की मजबूरियों में से इस हद तक गुजरना पड़ रहा है कि अपनी थकान और टूटन से नजात पाने के लिए उसे नश का सहारा लेना पड़ता है.

दूसरा नुक्ता यह है कि आज वोट पर आश्रित कुर्सीपरस्त राजनीति ने आदमी को बाजुबान होते हुए भी बेजुबान और हाथ होते हुए भी निहत्था बना दिया है. ऐसी हालत में आदमी अकेला पड़ जाने के एहसास से मुक्ति पाने के संघर्ष में नशे को अपना साथी बनाता है. कुछ लोग वजनाओं से भरे सभ्य युग में, रोक-टोक से रहित स्वच्छंद जीवन जीने की मनुष्य की मूलभूत जंगली इच्छा को भी इसके लिए जिम्मेदार ठहराते हैं.

मिलावटी शराब से होनेवाली मौतों के विरोध में नशे के पक्षधर यह तर्क देते हैं कि ये मौतें शराब के कारण नहीं बल्कि उसमें होनेवाली मिलावट के कारण होती हैं. और मिलावट आज किस चीज में नहीं हो रही हैं? तेल की मिलावट आदमी को अंधा और कोढ़ी बना रही है और घी की मिलावट धर्मभ्रष्ट. तो फिर शराब को लेकर ही इतनी हाय-तौबा क्यों है?

नशे के सेवन से नुकसान पहुंचने का एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी है कि ऐसा कोई भी काम आदमी के शरीर और मन को विकारग्रस्त करता है जिसे वह 'पाप' और 'अपराध भावना' से ग्रसित होकर करे. पाप भावना पर तो आदमी ने काफी हद तक विजय हासिल कर ली है, पर अधराध भावना से मुक्ति तब तक संभव नहीं है, जब तक सरकारें नशे से होनेवाली आमदनी का कोई ठोस विकल्प तलाश नहीं करतीं. ☐

. . . नशे जैसा कोई भी काम आदमी के शरीर और मन को विकारग्रस्त करता है, जिसे 'पाप' और 'अपराध' से ग्रसित होकर करें! —नशे की दुनिया के कई पहलू प्रस्तुत करता स्थायी स्तंभ—

कथा-सूत्र

चलते चलते—

किरायेदार मकान खाली कर रहा था. तभी मकान मालकिन वहां आ पहुंची. आराम कुर्सी में हुए छेद को देखती हुई वह बोली, "देखिए, आपने इस कुर्सी में छेद कर दिया है, आपको इसकी कीमत देनी पड़ेगी."

किरायेदार ने कहा, "मैं इसकी कीमत नहीं दूंगा. यह छेद मैंने नहीं किया."

मकान मालकिन ने हैरान होते हुए कहा, "बड़े अजीब आदमी हो तुम. अब तक 16 किरायेदार इसमें रहकर जा चुके हैं. तुम पहले आदमी हो जिसने छेद का हरजाना देने से मना किया." —सुशील कुमार 'अकेला'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

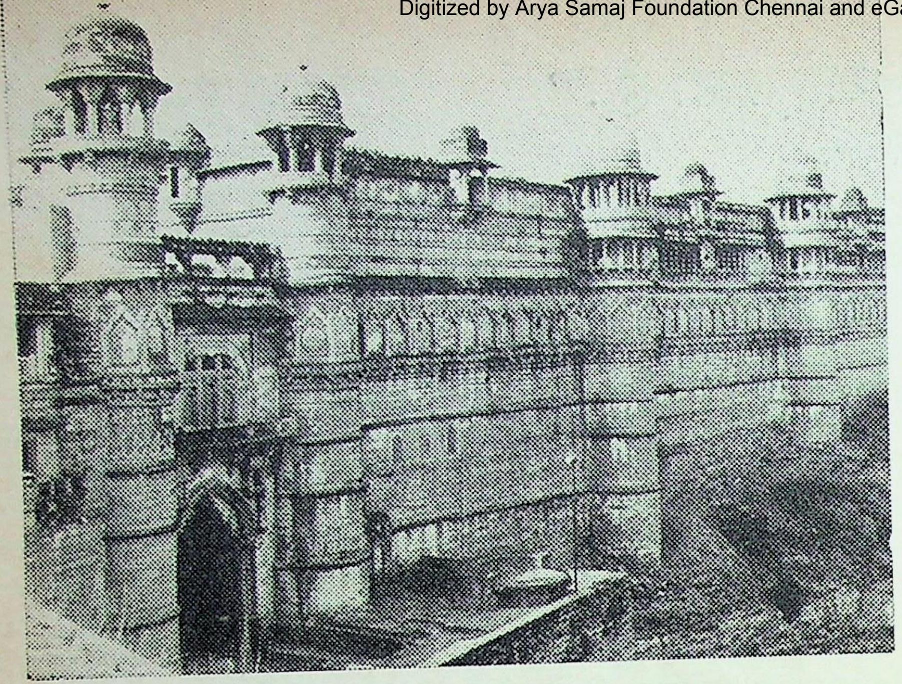

● ग्वालियर दुर्ग

शहर के बीच उभरता एक और शहर

दरके हुए सपनों का शहर : ग्वालियर

▣ हरीश पाठक

एक राजा था... एक रानी... एक दिन योंही राजा ने रानी से पूछा, "क्या तुमने कभी सोचा था कि तुम रानी बन सकोगी?"

"हां," रानी ने जवाब दिया.

"मगर कैसे?" राजा ने कुरेदा.

"दरअसल राजा, मैंने सपना पाला था...रानी बनने का सपना, खूबसूरत रोशनी से जगमगाते राजमहल का सपना, वे सपने पूरे हो गये पर..."

"पर?" राजा खोया-खोया-सा बोला और रानी के करीब आ गया, मगर रानी बात के बीच से उठ दी... "पर आज सहसा मेरे सपनों को ग्रहण लग गया है, मेरे सपने जगह-जगह से दरक रहे हैं, सपनों के टूटने की जानलेवा पीड़ा मेरे कलेजे को चीर रही है."

रानी के सपने दरक रहे थे!

रानी से जुड़े राजा के भी सपने दरक रहे थे!

राजा-रानी की यह कहानी प्राचीन है मगर रानी से विरासत में मिले टूटे, बिखरे, रेशे-रेशे हुए उन अभिशप्त सपनों को लिए आज भी एक शहर जीवित है. तीन हजार वर्षों की समृद्ध परंपरा को सहेजे, कस्बे और महानगर के तनावों को भोगता हुआ यह शहर आज हांफता हुआ ठिठका खड़ा है.

मुगलों का कैदखाना, मराठों का लश्कर, अंग्रेजों की छावनी, वास्तुशिल्पियों का आकर्षण, ऋषि गालव की तपोभूमि, सूरदास, तानसेन, बिहारी की जन्मभूमि कहा जानेवाला यह शहर बीसवीं सदी के नवें दशक तक आते-आते अपनी चमकदार उपलब्धियों को लिये आज यकबयक लड़खड़ा गया है, वह खुद से झगड़ने लगा है. शहर के ऐन कलेजे के बीच बहुत कुछ अटक गया है, जिसे न वह उगल पा रहा है और न ही लील पा रहा है.

दरअसल, मोहभंग की जानलेवा पीड़ा को इस शहर ने कई बार सहा है. शहर ने मोह पाले शहरवासियों से और शहरवासियों ने मोह पाले शहर से. जब-जब शहर के मोह टूटे वह भीतर ही भीतर छटपटाया, उसकी खूबसूरत शक्ल पर धब्बे उभर आये, पर वह तब भी सहज रहा. लेकिन जब शहरवासी के मोह टूटे वह शहर ही छोड़ गया... शहर से उसके रिश्ते खत्म हो गये... पर काश, ये रिश्ते खत्म हो पाते. काश, शहर और शहरवासी एक-दूसरे को भुला पाते. शहरवासी बंबई चला गया, दिल्ली में बस गया, अमरीका में रम गया, घर-परिवार से अलग हो गया, यार-दोस्तों को भुला बैठा, प्रेमिका के आकर्षण को तोड़ लिया, पर यदि कुछ नहीं तोड़ पाया तो वह था इस शहर का आकर्षण. ग्वालियर की संकरी और उलझी गलियों का मोह, इस माटी की सौंधी, आत्मीय, लचीली खुशबू का आकर्षण, पत्थरों पहाड़ों की चमकती आंखों का मौन आमंत्रण. वह नहीं भूल पाया नीम के नीचे झूले पर झूलती गोमती चाची को, सुबह चार बजे से ही, 'भए प्रकट कृपाला, दीनदयाला' का पाठ कर आस-पड़ोस को जगा देनेवाली विधवा शांति बुआ को, दिनभर तांगा चलानेवाले बीड़ी फूंकफूंकर अचानक बढ़े हो गये चाचा इलाहो को, फुटपाथ पर बरसों से स्लेट पैंसिल और इंगुर-महावर की दुकान सजाते बूचू बाबा को, नाली के किनारे बलगम उगलते और हर वक्त चौपड़ में मशगूल रहते किशन दर्जी को और वह नहीं भुला पाया था तो वह थी इस शहर की आदिम संस्कृति जिसमें बारबार गले मिलकर भी आदमी, आदमी के बीच की दूरी को पाट न सकनेवाले अकड़ैल संबंधों को.

● रानी झांसी की समाधि पर...

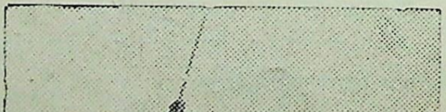

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास कभी समूचा अपने-आप सामने नहीं आता. वह लुभाता है, डराता है, वह धमकाता है और एक झटके के साथ फेंक देता है वक्त को तमाम खुशबूदार तस्वीरें. . .

इतिहास के मुताबिक महाभारत काल में इसे 'गोपराष्ट्र' कहा जाता था. तब 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग 'जनपद' के लिए किया जाता था. इस क्षेत्र के निवासियों ने अपने प्रमुख पर्वत का नाम 'गोवर्धन' रखा था. कालांतर में वह ग्लालिकेर, गोपाचल तथा ग्वालियर के नाम से जाना जाने लगा. आज का ग्वालियर, लश्कर, मुरार और पुराना ग्वालियर क्षेत्र में बंटा है. पुराना ग्वालियर कभी 'तखत शहर ग्वालियर' भी कहा जाता था.

ग्वालियर का प्राचीन उल्लेख मार्कंडेय पुराण में मिलता है. मार्कंडेय पुराण के अनुरूप मानसिंह तोमर का गंगोलाताल शिलालेख भी गोपाचल को 'गोवर्द्धनगिरि' कहता है. महाकवि रइधू ग्वालियर को 'गोव्वगिरि' कहता है और जैनुल आबेदीन का राजकवि जौनराज इसे 'गोपालपुर' कहता है. शैव संप्रदाय का प्रभाव किसी न किसी रूप में इस क्षेत्र में दिखाई देता है. आज भी इस क्षेत्र का कोई गांव ऐसा नहीं है जहां बनखंडेश्वर, सिद्धेश्वर, गुप्तेश्वर नाम के छोटे-बड़े शिवालय न फैले हों.

विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, जातियों को हर काल में इस शहर में मान्यता

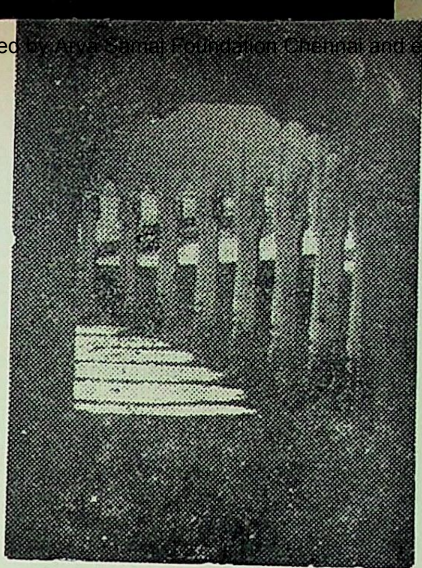

● बारादरी, फूलबाग

मिलती रही. महाराजा मानसिंह तोमर ने अपने राज्य में धर्म समन्वय को चरम पर पहुंचाया और सिंधिया राजवंश के आते-आते तक यह परंपरा बरकरार रही. महाराजा माधवराव (द्वितीय) फकीरी वस्त्र पहने खुद अपने कंधों पर ताजिया उठाते थे और हिंदू मुसलमान सभी एक-साथ 'हुसैन' की ध्वनि निकालते थे. यह इस शहर की ही तासीर है कि यहां पर एक ही परिसर में मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों की उपस्थिति मिल जायेगी.

पत्थर पर छैनी हथौड़ों से जान फूंक देनेवाले कलाकार ग्वालियर ने ही पैदा किये. अकबर मुगल को पत्थरों के मोह ने सताया तब उसने बहुत से कारीगरों को फतेहपुर सीकरी और आगरा को सजवाने के लिए बुलाया.

संगीत और खेल की भी एक अत्यंत धनी परंपरा ग्वालियर से जुड़ी है. राजा मानसिंह तोमर के सान्निध्य में बैठकर जिस तानसेन ने सरगम बजायी थी वह तानसेन संगीत की दुनिया का अमर साधक बन गया. तानसेन की जन्मस्थली और उसका मकबरा आज भी इस शहर की महत्वपूर्ण थाती बना हुआ है. हिंदी के संगीत विषय के पहले ग्रंथ 'मानकुतुहल' की रचना ग्वालियर में ही राजा मानसिंह तोमर द्वारा की गयी. यही नहीं राजा मानसिंह के गायनाचार्यों ने जिस विशाल पदसंग्रह का सृजन किया वह 'सूरसागर' का आधार बना. यह एकदम अलग बात है कि साहित्य के गलत समीकरणों ने सूरदास को उनकी जन्मभूमि ग्वालियर से वंचित कर दिया है पर 'सूरसागर' के ग्वालियरी स्रोत को नकारा नहीं जा सकता. सोलहवीं शताब्दी में ब्रज में अपनाये गए रासनृत्य का उद्भव स्थान भी ग्वालियर ही है. उधर गामा और इमामबख्श जैसे पहलवानों को चुनौती देने वाला पहलवान रमसइया उर्फ रामसहाय ग्वालियर के दिग्गज मसलों में से था.

मुगलों और अंग्रेजों ने सत्ता की अनबुझ प्यास की खातिर कभी कैदखाने के रूप में इसका इस्तेमाल किया तो कभी ऐशोआराम के लिए. छठे दशक के उत्तरार्द्ध तक आते-आते शहर की आबोहवा बदलने लगी, वह नयी करवट लेने लगा. वह नयी सांसें भरने लगा. देश भर में फैली एक नयी कौम ने मेरे शहर में भी अपने पांव जमा लिये. नौकरशाही के गुस्से से जन्मी घर-परिवार के गुणाभाग में उलझी यह कौम शहर के रगरग में बस गयी. तब अचानक कई संस्कृतियां उभर आयीः गांव गवई की संस्कृति, झूठफरेब की संस्कृति, अविश्वास, कायरता और धोखे की संस्कृति, छलछदम की संस्कृति, महानगरीय फरेब की संस्कृति, झूठी मुसकानों की संस्कृति, कभी सच न बोलनेवाले राजनीतिज्ञों की संस्कृति. . .!

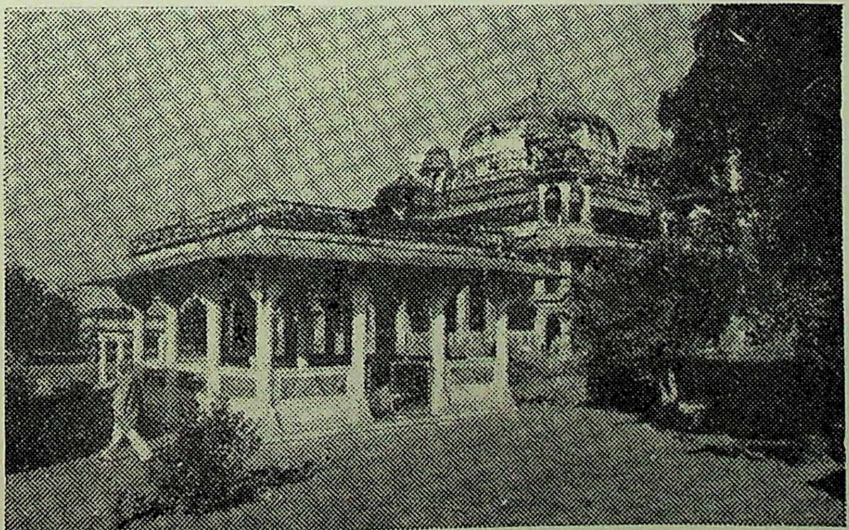

● तानसेन का मकबरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मेरे शहर का ही चरित्र है, जहां दिन भर दालबाजार में हम्माली कर, रात को भजन मंडली में ढोलक मंजीरे के साथ 'कलकत्ता की कालिका और गरगज के हनुमान' गाता हुआ बनवारी और चरस के नशे में धुत्त टेपरिकार्डर पर बजते डिस्को-दीवाने के साथ बेहाल हुआ जाता बंटी एक ही मोहल्ले में एक साथ उठते बैठते हैं. बहुमंजिला इमारतों के बीच आज भी कच्चे मकानों की कतार है. आज भी अम्मां गोबर से मकान को लीपकर ऐपन से माढने काढ़ती हैं.

कथा-कीर्तन, हाट और मेलों के प्रति एक असीम आकर्षण है शहर-वासियों में. मंगलवार, शनिवार को खेडापति के दरवाजे और सोमवार को अचलेश्वर महादेव की चौखटों पर श्रद्धानत् जनता तादाद में देखने को मिलती है.

राजतंत्र के अवशेष मेरे शहर में जगह-जगह बिखरे पड़े हैं. ढेरों इमारतें राजे-रजवाड़ों की अतीत-कथाओं को कहती हैं, पर कुछ आज आज संग्रहालय बन गये हैं तो कुछ महाविद्यालयों में तबदील हो गये हैं तो कुछ पर्यटन स्थल बना दिये गये हैं.

लेकिन आज का ग्वालियर कोलाहल के बीच है, वह भागमभाग में उलझा है. आज उसके पास मांगें हैं, नारे हैं, आमसभाएं हैं, हड़तालें हैं, तालाबंदियां हैं, नेता हैं, जनता है, बैनर हैं, पोस्टर हैं, शोर हैं, अफवाएं हैं अखबार हैं, अखबारनवीस हैं. जियाजीराव काटन मिल्स और ग्वालियर रैयन का धुंआ है, जे. बी. मंघाराम की हैं, ग्वालियर पॉटरीज के अवशेष है और हैं आश्वासनों, सपनों, भ्रमों में पलता एक पूरा का पूरा तबका.

राजनीति आज के ग्वालियर की प्राणवायु है. चाहे वह सत्ता की राजनीति हो या साहित्य की, दोनों ही क्षेत्र इस शहर में समान रूप से सक्रिय हैं. सत्ता की राजनीति आज राजघराने से उत्तरकर जनसामान्य के साथ है. हर राजनीतिक विचारधारा

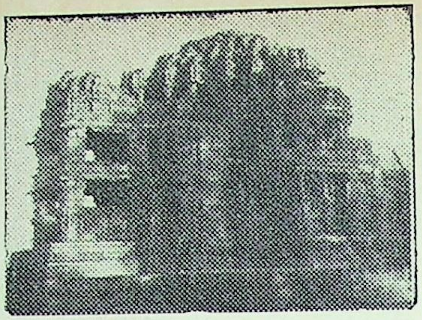

● सास-बहू का मंदिर

आज शहर में विकसित हो रही है. बूढ़े राजनीतिक खारिज होकर नयी पीढ़ी को उत्तराधिकार सौंप रहे हैं. यूं दोनों ही ध्रुव कार्यरत हैं. और साहित्य की शतरंज में दोनों पीढ़ियां एक साथ है, उमर के लंबे अंतराल को भूलकर आत्मीय और अंतरंग मुद्राओं में. यह एक अलग बात है कि शहर की युवा पीढ़ी पत्रकारिता और साहित्य को साथ-साथ लेकर चल रही है. रंगमंच आज प्रेक्षाग्रहों से उतरकर मेरे शहर की गलियों में बस रहा है उसने पुराने मापदंड तोड़े हैं, वह अब सीधे मंच पर आने के बजाय बहस विवाद कर मंच पर आ रहा है.

और यह वही शहर है जिसे हर काल और हर स्थिति में देश याद करता है. महारानी लक्ष्मीबाई कला और वाणिज्य महाविद्यालय न केवल अपनी प्राचीन ऐतिहासिक इमारत के कारण मशहूर है बल्कि उसके परिसर, चबूतरे और चौखटों की यादें हैं जानिसार अख्तर, शिवमंगलसिंह सुमन, गिरजाकुमार माथुर, राजनारायण बिसारिया, अटलबिहारी वाजपेयी, मुकुटबिहारी सरोज, निदा फाजली, मोतीलाल शर्मा, ओम

● रेलवे स्टेशन

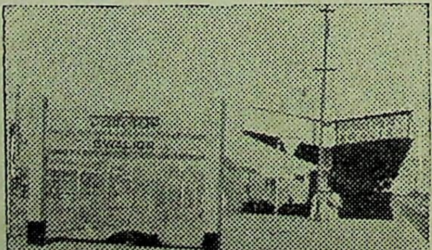

प्रभाकर, प्रकाश दीक्षित, की जिन्होंने इस महाविद्यालय से शैक्षणिक योग्यताएं हासिल कर देश के नक्शे पर शहर का नाम रखा. रवि टंडन, ज्ञानी, शरद जोशी, रामकुमार भ्रमर, जावेद अख्तर कितने ही ऐसे नाम हैं जिन्होंने अपनी संघर्षयात्रा के कई वर्ष इस शहर के नाम लिखे हैं. ग्वालियर की गलियों में ही विचरते हुए स्व. आनंद मिश्र ने 'चंदेरी का जौहर' जैसी कालजयी कृतियों की रचना की, वसंत मिश्र के रंग इसी शहर में पके और रुद्र हांजी की कला ने इसी शहर में खुद को चिरयुवा बनाया.

और शाम सात बजे से रात बारह बजे तक कभी भी किसी वक्त आप नयी सड़क चले जाइए, गहराती रात के साथ गहरे होते लोग आप देख सकेंगे. हर किस्म के, हर उमर के लोग. चायघरों के आसपास, बंद दुकानें के बाहर, पान की दुकान के नजदीक लेखक, पत्रकार, नेता, छात्रनेता, रंगकर्मी, चित्रकार...हर क्षेत्र के लोग आपको मिल जायेंगे. अपने-आप में खोये, अपनी रंगीन दुनिया में डूबे.

यह भी ग्वालियर है!

मैं लौट रहा हूं, अरसे बाद अपने शहर आया था. स्टेशन आ चुका है. मेरे मित्र रमाकांत जो एक संग्रहालय में तमाम पुरातात्विक वस्तुओं को संवारते हैं, अचानक भावुक होते हुए कहते हैं, "यह शहर गजब का है दोस्त, यह वही शहर है जहां वैज्ञानिक बनने का सपना पालनेवाला माधो दूसरों की आंखों के लेंस घिसने के लिए मजबूर है, यह वह शहर है जहां किशोर जुसेजा जैसा लेखक सट्टेबाजार की परचियां लिख रहा है और यह वह शहर है दोस्त, जहां के पत्थरों का आकर्षण मुझे आठ बरस बाद फिर शहर में खींच लाता है!" फिर वह ठिठक कर कहते हैं, "मैं एक संग्रहालय बनाना चाहता हूं...दरके हुए सपनों का संग्रहालय!"

मैं चुप लगा जाता हूं, रमाकांत मेरे कंधे झंझोड़ते हैं. मैं तब भी चुप हूं, क्योंकि रमाकांत से जुड़े मेरे सपने अब दरक रहे हैं! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मकथा : एक अंश

अपनी दो टूक बयानबाजी और साम्यवादी विचारधारा के कारण प्रायः चर्चा के विषय बने रहे वयोवृद्ध रचनाकार की पिछले दिनों लिखी गयी आत्मकथा से चुना गया एक महत्वपूर्ण अंश——

सावन आता है तो जीवन में उल्लास की तरंग दौड़ जाती है. चंचल लड़के 'बादल आये, बादल आये' का राग अलाप कर काली घटाओं का स्वागत करते हैं और अबोध बालिकाएं हाथों में हाथ डालकर 'कंघी करीर की पग मेरे वीर' गाती हुई नाचती-थिरकती हैं. पेड़ों पर झूले पड़ जाते हैं और गिद्धा की गमक के साथ-साथ भटियारों के रसीले बोल सुनाई देते हैं:

तेरी हिक ते आहलना पाया, कब्ज कबूतर ने.

धुले हुए पेड़-पौधे रंग-बिरंगे परिधानों में बाराती बने हुए हैं, हरी-हरी कोमल घास हवा से मिस्कोट कर रही है, पक्षी चहचहा रहे हैं और पशु कुलांचे भर रहे हैं. समस्त प्रकृति आनंद-विभोर है और दृष्टि जिधर भी उठ जाये, उन्माद, उल्लास और सौंदर्य के सम्मिश्रण का मनमोहक दृश्य दिखाई पड़ता है.

बरसात की इस मतवाली रुत में मैं और मेरा हमजोली हंसा जंगल में घम रहे हैं, प्रकृति के अनुपम सौंदर्य और मनमोहक दृश्यों की ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं है. हम बीरबहूटी जैसे निरीह, निरापद और कोमल जीव को बोतलों में भरने के नीरस और गिजगिजे काम में व्यस्त हैं. बीरबहूटी जिसे उत्तरी भारत के कुछ भागों में 'तीज' भी कहते हैं, मखमल जैसी मुलायम नन्हीं-सी जान है. लगता है कि लाल रत्ती अथवा हीरे की कणी में जान पड़ गयी है. कवि ने कल्पना की है कि शायद नक्षत्रों की अचकनों के बटन टूट-टूटकर गिर पड़े हैं अथवा अप्सराएं बरसात का आनंद लूटने के लिए भेस बदलकर धरती पर उतर आयी हैं. कुछ भी कहो, निरापद और निरीह बीरबहूटियों, बरसात की ललनाओं को, जिनमें से अधिकांश स्पर्श की उष्णता तक सहन नहीं कर पातीं, पकड़-पकड़कर बोतलों में बंद करना, अपने साथी हंसा की मैं नहीं कहता, मुझे बहुत अप्रिय लग रहा है. यों भी हमारे धार्मिक और जन्मगत संस्कार जीव हत्या के विरुद्ध हैं, पर मास्टर लियाकत हुसैन का आदेश पालन करने पर विवश हैं.

"लालची कुत्ता!" हठात मेरे मुंह से निकला.

"लालची कुत्ता कौन?" मेरे हमजोली ने पूछा. एक अर्थपूर्ण दृष्टि मुझ पर डाली.

मैं चुप रहा. मेरे हाथ में एक मृतक बीरबहूटी थी और मनग्लानि से विक्षुब्ध था. जी चाहता था कि बोतल को धरती पर पटक कर तोड़ डालें, लेकिन मैं हंसा की दृष्टि से सहम गया और मेरा दिल भय से धक-धक करने लगा. आशंका नहीं, मुझे विश्वास था कि मास्टर के पास शिकायत अवश्य होगी और 'लालची कुत्ता' कहने का दंड भुगतना पड़ेगा, पर अब हो भी क्या सकता था? बात जो मुंह से निकल गयी, सो निकल गयी. उसे लौटाना संभव नहीं था.

हम दोनों एक साथ मदरसे गये और अब दोनों एक साथ स्कूल में पढ़ते थे. तब से अब तक चार साल बीत चुके थे. उम्र में चार-पांच बरस बढ़ जाने से शरीर और अचरण का अंतर उजागर होने लगा था.

मैं पहले ही की तरह क्षीणकाय था जब कि हंसे का शरीर फैल गया था. जहां मेरे हाथ छोटे और कोमल थे, वहां हंसा के हाथ मोटे और खुरदरे थे. उसके पैरों में जो जूता था, वह साइज में मेरे जूते से अगर दुगना नहीं तो डयोढ़ा जरूर था. जैसी उसकी खाल मोटी और खुरदरी थी, वैसा ही स्वभाव था. हम दोनों के जन्मगत संस्कार भले ही एक जैसे थे, पर बीरबहूटियां पकड़ते हुए जो ग्लानि मैं महसूस कर रहा था, वह नहीं कर रहा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पांचवीं जमात का विद्यार्थी था और पढ़ाई के मामले में गांवभर मेरी प्रशंसा करता था, लेकिन हंसा मुश्किल से तीसरी में पहुंच पाया था और वह एक जड़बुद्धि विद्यार्थी समझा जाता था. पढ़ाई में अरुचि के कारण उसने मदरसे जाना छोड़ दिया था और इसी कारण उसने जाने की जरूरत नहीं समझी थी. इसके बावजूद वह मुझसे ईर्ष्या करता था और उससे मेरी प्रशंसा सहन नहीं होती थी. ऊपर से वह दोस्ती का दम भरता, पर मुझे नीचा दिखाने और मास्टर से मेरी चुगली करने का कोई भी अवसर वह चूकता नहीं था.

"यह कलमदान तो अनायत का है. तुम्हारे पास कैसे आया?" हंसा ने मेरे घर पर कलमदान देखा तो मुझसे पूछा.

"हां, अनायत का है." मैंने उत्तर दिया और कहा, "मैंने उससे कागज-पेंसिल के पैसे लेने हैं. उन पैसों के बदले उसने कलमदान मुझे दे दिया है."

"यह कहो कि तुमने उससे खरीद लिया है."

"खरीदा तो नहीं, पैसे मिल जायेंगे तो मैं कलमदान उसे लौटा दूंगा."

मित्रों में जैसे सहज स्वभाव बातचीत होती है, वैसे ही हंसा में और मुझमें यह गुफ्तगू हुई, लेकिन दूसरे ही दिन सब लड़कों के सामने मास्टरजी ने अनायत से पूछा.

"तुम्हारा कलमदान कहां है?"

अनायत चुप. उसकी गर्दन झुक गयी और निगाहें धरती पर जा गड़ीं.

"तुम बताओ, इसका कलमदान कहां है?" मास्टर ने मुझसे पूछा.

हंसा क्रूर उल्लास आंखों में भरे मेरी ओर देख रहा था.

"जी, मेरे पास है." मैंने कहा.

"तुम यहां पढ़ने आते हो या दुकानदारी करने?" मास्टर ने मुझे डांटा.

"पढ़ने." मैंने धीमे से उत्तर दिया.

"तुम्हें क्या हक था उससे कलमदान लेने का?" मास्टर ने आंखें तरेरीं और आदेश दिया, "कलमदान उसे वापस ला दो, वरना मरम्मत होगी."

"अच्छा जी, ला दूंगा." इसके सिवा चारा ही क्या था.

"सुनो लड़कों," मास्टर फिर बोला, "जिस किसी ने इससे उधार लिया हो, कोई उसे एक पैसा मत दे. खबरदार, किसी ने दिया तो मरम्मत होगी."

मास्टर को मालूम था कि मैं शहर से स्टेशनरी लाकर लड़कों के हाथ बेचता हूं और उसी से अपनी पढ़ाई का खर्च चलाता हूं. न सिर्फ यह कि मास्टर को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी, बल्कि इसके लिए वह मेरी तारीफ करता था. तब मैं और सद्दीक दोनों उसके प्रिय और विश्वस्त शिष्य थे और हमारे आपसी संबंध बहुत अच्छे थे, लेकिन पिछले कुछ दिनों से मेरे प्रति उसका रवैया बदल गया था. सद्दीक उसका सहयोगी और मैं उसकी आंखों का कांटा बना हुआ था. वह किसी भी बहाने मुझे सताया करता था. उसने यह घोषणा भी मुझे सताने के लिए की थी.

लियाकत हुसैन जब गांव के जीवन से भली-भांति परिचित हो गया तो उसने धनी और प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रति खुशामद और चापलूसी की नीति अख्तयार की. अब्दुल करीम खां के पास तो वह रहता ही था और उसके बेटे गफूर से खूब घनिष्टता थी. उनके अलावा अनायत का बाप शौकत हुसैन और मकबूल का बाप अब्दुल्ला भी गांव के बड़े जमींदार थे. मास्टर हफ्ते में तीन-चार मर्तबा उनके दरे-दौलत पर हाजिर होकर सलाम बजा लाता था. मैं और सद्दीक साथ रहते थे. अब्दुल्ला और शौकत हुसैन आपस में रिश्तेदार थे और उनके मकान एक-दूसरे से सटे हुए थे. मास्टर हर मुलाकात में यह जताना कभी न भूलता था कि उनके दोनों लड़के होनहार हैं और पढ़कर खानदान का नाम रोशन करेंगे, इसलिए वह भी उन पर खास मेहनत करना अपना फर्ज समझता है.

"मास्टरजी, आपके लिए दो बीघा कपास भिजवा दी जाय तो क्या हर्ज है?" एक दिन शौकत हुसैन ने अपनी उदारता का परिचय दिया.

"आप लोगों की नवाजिश है. खुदा ने जिसे तवक्कल की दौलत अता कर दी है, उसे सब कुछ दे दिया है." मास्टर ने उदासीनता प्रदर्शित की, लेकिन लुकमा पकड़ने के लिए आगे कहा, "मैं कहां इस संकट में पड़ूंगा.?"

"झंझट किस बात का," शौकत बोला, "नलाई, सिंचाई के लिए लड़के मौजूद हैं. जब आप लड़कों को इतनी मेहनत से पढ़ाते हैं तो वे भी आपके लिए यह काम खुशी से करेंगे."

"मदरसे में मौलवी साहब भी हमसे यह काम लिया करते थे." सद्दीक ने, जो हमेशा मास्टर की भलाई सोचता था,

कमीशन

■ यशपाल वैद

तीन चक्कर लगाने पर भी जब नये स्कूटर का रजिस्ट्रेशन नंबर न मिला तो उन्हें बड़ी कोफ्त हुई. उनके मन में इस व्यवस्था के लिए गालियां निकलीं, जहां एक छोटे से काम के लिए चक्कर पर चक्कर लगाने पड़ते और हर बार निराशा का मुंह देखना पड़ता है. कभी व्हिकिल इंस्पेक्टर नहीं तो कभी रजिस्ट्रेशन अथारटी नहीं और कभी छोटे बाबू नहीं, कभी बड़े बाबू नहीं. तीसरी बार जब वह लौटकर आये तो उन्हें एक साथी ने बताया, "अरे, सब वहीं होते हैं, मिली भगत होती है. आप किस भ्रम में हैं. कचहरी है, कचहरी, जहां धूप और छाया भी मूल्य चुकाने पर नसीब होते हैं."

वह इस बार पहुंचे तो उन्हें वहां अपना एक शिष्य बैठा दिखाई दिया. उन्हें देखते ही वह सम्मानपूर्वक उठा, उन्हें कुर्सी दे बिठाया. बाहर खिड़कियों की भीड़ उनको तरफ द्वेषभरी दृष्टि से देखने लगी. अंततः उन्होंने अपनी समस्या बतायी तो शिष्य ने अपने गुरुजी का ध्यान करते हुए सब कागज हाथों में लिये, कुरसी से उठा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन सब कुर्सीमैनों से गुफ्तगू करने के बाद लौटा. गुरूजी यही समझने लगे कि पुराने शिष्य ने काम करवा लिया है, पर नहीं, शिष्य उन्हें संकेत से बाहर ले गया और एक दीवार की ओट में खड़े होकर कहा, "गुरूजी माफ करना, आपका काम हो जायेगा, मेरी वजह से थोड़ी रियात तो हो जायेगी, फिर भी चालीस देने हो पड़ेंगे--दस मेरी वजह से कम--यहां बिना लिये किसी का काम नहीं होता. यह हम सब का समझौता है."

"तो. . .तो. . ." क्रोधावेश में गुरूजी बोले.

"गुरूजी, माफ करना, मैं भी इस व्यवस्था में बंधा हूं. आखिर नौकरी तो करनी है."

गुरूजी ने जेब से पचास का नोट निकालकर उसे थमा दिया और इससे पहले कि शिष्य दस का नोट वापस देने के लिए जेब में हाथ डालता--गुरूजी आक्रोश और व्यंग्य के स्वर में बोलकर संतुष्ट हुए, "अरे भई, तुम भी क्यों अपनी कमीशन छोड़ते हो--रहने दो--रहने दो."

कुछ समय पश्चात, रजिस्ट्रेशन नंबर की बुक उच्च अधिकारी के हस्ताक्षरों सहित उनके हाथ में थी. उन्हें बड़ी राहत मिली.

● हिंदी विभाग, डी. ए. वी. कालेज, अंबाला शहर

बात आगे बढ़ाई और मुस्कराते हुए कहा, "यह एक ऐसा काम है, जिससे लड़कों की तफरीह हो जाती है."

कपास बोई गयी और फिर अब्दुल की दो बीघे जमीन में गेहूं बोया गया और बस लड़कों की तफरीह होने लगी. यह तफरीह उन्हीं लड़कों को करनी पड़ती थी, जो घर से गरीब थे और जिनकी शिकायत की कहीं सुनवाई नहीं थी. इसके अलावा फर्ज की डींग हांकने वाला लियाकत हुसन उन्हें जितना नोच सकता था, नृशंस नोचता था. एक-एक पैसा दांतों से पकड़ता था.

गांव में तंबाकू का ठेका था, जो हर साल नीलाम होता था. तंबाकू तो बिकता ही था, पर जो गाहक तंबाकू लेने आते थे, वे गुड़-शक्कर, रंग-फटकरी इत्यादि दूसरे सौदे भी उसी दुकान से खरीद ले जाते थे. इसलिए खूब होड़ लगती और नीलामी प्रायः काफी चढ़ जाती थी. इस बरस तंबाकू का यह ठेका मेरे पिता के नाम छूटा था. हिंदू जाट सिर्फ नसवार सूंघते और तंबाकू ज्यादातर मुसलमान ही पीते थे. इसलिए पिता ने अपनी दुकान के बजाय बाजार के मध्य में एक दूसरी दुकान ली, जो मुस्लिम मुहल्ले के नजदीक थी. तंबाकू और दुकान का काम संभालना पिता के बस का रोग नहीं, इसलिए लहरा मंडी से बचना राम को बुला लिया था.

इस दुकान के सामने फरीदा रंगरेज रहता था. वह खुद तो दमे का मरीज मरियल-सा आदमी था, पर उसकी बीवी रहमत बिल्कुल चुस्त-दुरुस्त चुलबुले स्वभाव की औरत थी. गांव के हर मर्द से उसका खुला मजाक था मानो वह गांव भर की भाभी और गांव के सभी मर्द उसके देवर थे. कपड़े रंगने का धंधा उसकी बदौलत चल रहा था.

"कितने पैसे दूं?" रंगवाने के बाद रहमत से पूछा.

"जितने मास्टर ने दिये हैं, दे दो. मैं क्या ज्यादा लूंगी."

"मास्टर ने कहां दिये? मैं अपनी जेब से दे रहा हूं."

"तुम अपनी जेबों से क्यों दोगे? क्या मास्टर इतना भूखा है कि रंगाई के पैसे भी नहीं दे सकता?"

"वैसे न हो, नीयत का तो भूखा है ही."

काम पांच आने का था, पर रहमत ने मुझ से चार आने ही लिये और वह सारे बाजार में गाती फिरी.

"देखा आपने इस मास्टर को, रंगाई के पैसे भी नहीं दे सकता. वे भी लड़कों ही को देने पड़ते हैं."

बात मामूली थी, पर मास्टर के प्रति सबके मन में अवज्ञा भरी थी, इसलिए तूल पकड़ गयी.

"क्यों हंसे, मास्टर के साफे की रंगाई के पैसे तुमने दिये?'

शाम को जब लोग चौपाल में इकटठे हुए तो हंसा के भाई निक्का राम ने मुझसे पूछा.

"हां." मैंने सिर हिलाकर हामी भरी.

"मास्टर की बात ही छोड़ो. उसे तो रोटी खिलाना भी मुसीबत बन गया है. घी-बूरा रोज-रोज नहीं खाया जाता तो लाने से मना कर दे." चिड़ी ने चिढ़कर कहा और बात जारी रखी, "पर हुक्म दे दिया कि घी और बूरा अलग-अलग लाओ. अब गरीब से गरीब आदमी भी कम-से-कम आध पाव घी और पाव भर बूरा भेजे तब पिंड छूटे."

मास्टर की रोटी लड़कों के घर से जाती थी. मुसलमानों के घर गोश्त बनता था और हिंदू रिवाज के मुताबिक घी-बूरा भेजते थे. मास्टर जब से आया था, यही सिलसिला चल रहा था, लेकिन इधर कुछ दिनों से मास्टर ने हिंदू लड़कों को हिदायत की थी कि घी-बूरा एक ही प्याली में मिलाकर लाने के बजाय दो प्यालियों में अलग-अलग लाया करो. चिड़ी का संकेत इसी बात की ओर था.

"सुना है कि मास्टर घी-बूरा जमा करके बेचता है."

"जरूर बेचता होगा." काकू ऊंट वाले ने समर्थन किया और नाक-भौं चढ़ाकर आगे कहा, "कल हमारे लड़के से कहला भेजा कि सेरभर खोया चाहिए. अब दूं तो मुश्किल-न दूं तो मुश्किल."

वार्षिक परीक्षाओं की घोषणा करते समय मास्टर ने इस बात का विशष ध्यान रखा था कि कितना घी सीधी अंगुली निकल आयेगा और कितना टेढ़ी अंगुली से निकालना होगा अर्थात जिन लड़कों से उसे यह आशा थी कि पास होने की खुशी में वे मास्टर को भी 'खुश करेंगे,' उन्हें उसने पास घोषित कर दिया था और जिनसे यह आशा नहीं थी, उन्हें किसी न किसी विषय में चंद अंकों से फेल दिखाया था. ये लड़के तब जमात चढ़ पाये, जब मास्टर को भी 'चढ़ावा' चढ़ गया. हंसा और मुहल्ले के दूसरे लड़के इसी तरह जमात चढ़े थे. एक मैं अपवाद था और वह भी इसलिए कि मैं पढ़ने में होशियार था और निचली जमातें पढ़ाने के मास्टर का सहयोगी था, बल्कि इसलिए कि तब तक मेरे और मास्टर के संबंध बिगड़े नहीं थे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

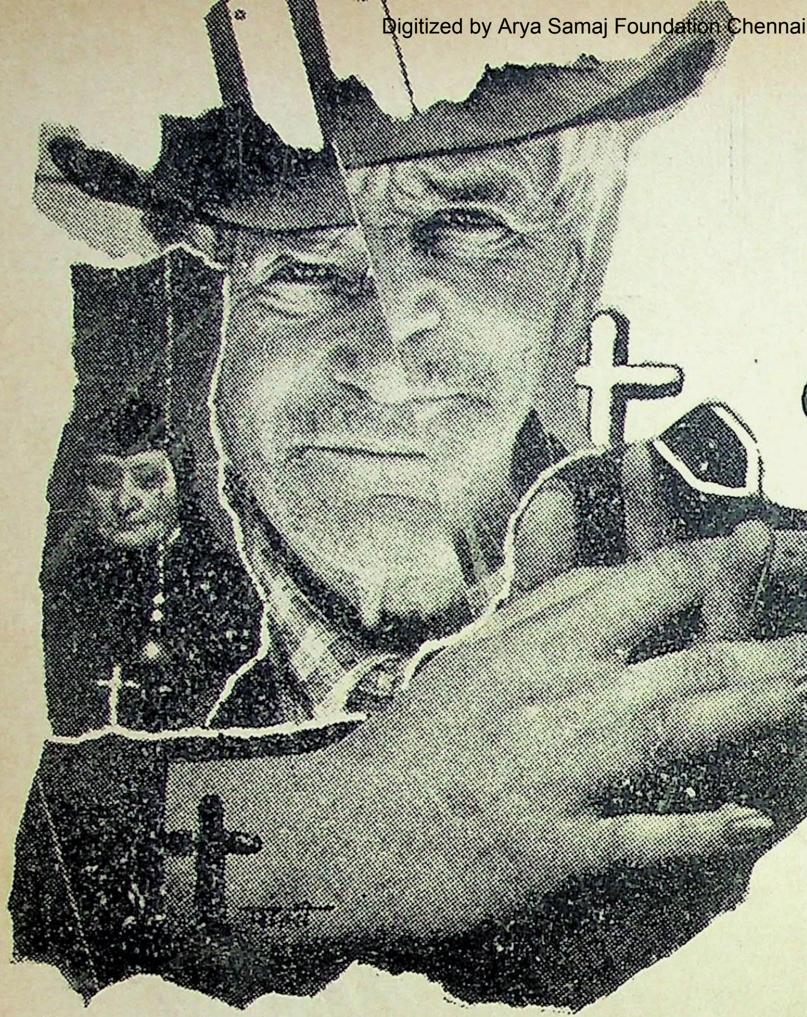

• जयशंकर

बूढ़े पीटर की कब्र

एक के बाद एक मौत मनुष्य को किस कदर तोड़ती और जोड़ती है? —एक ईसाई परिवार की व्यथा को रेखांकित करती कहानी—

शहर का वह हिस्सा सेमिनरी हिल्स कहलाता था.

पहाड़ी पर सेंट फ्रांसिस कॉलेज था. बरसों पुराने पेड़ों के बीच बसा हुआ. कॉलेज के छात्रों के लिए होस्टल था. गिरजाघर था. पार्क था. मैदान था. शाम के समय फुटबाल और वॉलीबाल के मैदान खिलाड़ियों से भरे होते. अंधेरे के गहराते ही मरियम की प्रतिमा के समाने मोमबत्ती जल उठती. करुणा और ममता में डूबा मरियम का चेहरा मोमबत्ती के उजाले में चमकता. पहाड़ी की ढलान पर लूर्द माता का मंदिर था, नीलगिरी के पेड़ों और चट्टानों के बीच खड़ा हुआ.

पहाड़ी के पैरों पर बस्ती थी. हमारे घर के पास डाकघर की पीली इमारत थी. बस्ती में दो लेटरबॉक्स थे. डाकघर के सामने और फ्रांसिस साहब के बंगले के पास. साहब का घर फेंस से घिरा हुआ था. वहां हमेशा गुलाब के फूलों की देखभाल के लिए माली रहता . माली की अनुपस्थिति में बूढ़ा कुत्ता जैकल देखभाल करता. बंगले में साहब अपनी बूढ़ी मां के साथ रहते थे.

फ्रांसिस साहब की सदर में बेकरी थी. साहब की मां को हम 'नानी' कहते. साहब के बेकरी जाते ही वह अकेली रह जाती. बूढ़े जैकल और रोशनदान पर बैठनेवाली चिड़िया के साथ दिन भर उनका नीला दरवाजा बंद रहता. अखबार और पत्रों के लिए दरवाजा नहीं खुलता. उनके लिए खिड़की ही काफी थी. शाम होते ही नानी अपनी विक्टोरियन पोशाक और ऊनी जुराबों के साथ दहलीज पर दिखाई देती. बेंत की कुर्सी पर उनकी बूढ़ी देह प्रार्थनारत रहती.

बंगले के पहले कमरे की दीवारों पर हिरन के सींग, शेर का चेहरा, जापानी औरत की तस्वीर और कुछ दूसरी तस्वीरें रहतीं. उनमें एक तस्वीर नानी की जवानी की भी थी. टेरेस पर खड़ी जवान नानी की तस्वीर. उस तस्वीर के पास ही मरे शेर का चेहरा लटका रहता. फोटोवाली नानी और सचमुच की नानी को देखकर मुझे अजीब-सा लगता. उस समय नानी की जवानी की तस्वीर और नानी को देखना जादू के खल की तरह था. ड्रैकुला की उस फिल्म की तरह जिसमें कब्र में सोयी जवान औरत एकाएक बूढ़ी और भयानक औरत में बदल जाती है. उन दिनों मेरे लिए मनुष्य का बुढ़ापा, अंधेरी सड़कों पर भटकती चुड़ैल की तरह रहस्यमय था. स्कूल से लौटते ही मैं नानी के पास जाता. उस समय वह प्रार्थना में होती. पहाड़ी के पेड़ अंधेरे में डूबे रहते. बूढ़ा डाकिया दिन की अंतिम डाक निकालने के लिए लेटर बॉक्स खोलता. डाकिये की खाकी थैली को देखकर जैकल रोज की तरह भौंकने लगता.

नानी अस्थमा की मरीज थीं. सर्दियों के दिनों में उनकी तकलीफ बढ़ जाती. तकलीफ के समय वह किसी मरते हुए पक्षी की तरह तड़पती. अपनी यातना को अपने से अलग करने के लिए छटपटाती. किसी जलते हुए आदमी की तरह, जो आग से अपने को अलग करने के लिए छटपटाता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं साहब को बुलाने के लिए बेकरी जाता. ऐसे समय नानी के पास बूढ़ा पीटर, क्लारा और क्लारा की मां आ जाती. साहब के अलावा क्लारा का परिवार ही अकेला ईसाई परिवार था. बेकरी में साहब अंग्रेजी उपन्यास पढ़ते मिलते. दीवार पर 'लास्ट सपर' चित्र टंगा रहता. लंबी मेज के सामने जीसस बैठे रहते.

"मम्मी की तबियत. . . ?" साहब पूछते.

"हां, उनकी छाती में वैसा ही दर्द उठा है." मैं कहता. बकरी के पीछे आखिरी कमरे में नौकर काम करते रहते. उनकी देह पर गंदी बनियान होती. आटे, पसीने और थकान में उनकी देह लिथड़ी होती.

सर्दियों की किसी शाम में नानी की तबियत बहुत बिगड़ गयी थी. उस शाम साहब वाय. एम. सी. ए. क्लब में टेबिल टेनिस खेलने गये हुए थे. मैं उनको बुलाने क्लब गया था. क्लब के पास ही मीठा नीम का दरगाह था. किसी पीर की मजार, दरगाह के आसपास भक्तों और भिखारियों की भीड़ थी. कभी सर्दियों में भीख मांगते किसी भिखारी की आवाज उभरती, कभी कव्वाली गाते हुए कव्वाल की आवाज. उस शाम दरगाह के सामने भूत-प्रेत से जकड़ी औरतों को झूमते हुए देखने गया था. उनकी देह सड़क की धूल से लिथड़ी हुई थी. वे गरीब औरतें थीं फटी और मैली साड़ियों में लिपटी हुई.

उस शाम नानी को मयो मेमोरियल अस्पताल में भर्ती करना पड़ा था. साहब के न होने से पीटर ही उन्हें अस्पताल ले गये थे. उनके साथ उनकी पत्नी और क्लारा थी. स्वयं पीटर काफी बूढ़े थे. तपेदिक के रोगी. एडविन के मरने के बाद वे लगातार बीमार रहने लगे थे. एडविन उनका जवान लड़का था. क्लारा उनकी लड़की. एडविन नदी में डूबने से मरा था. एडविन की इस तरह की मौत ने समूचे पीटर को नष्ट किया था.

पीटर का अपना गरेज था. शाम होते ही पीटर शराब पीकर बड़बड़ाने लगते. अपने एडविन के बचपन के संस्मरण सुनाने लगते. उनकी आवाज में पिघलती हुई पीड़ा होती. टूटे हुए मनुष्य की पीड़ा. उनकी आवाज नशे से ज्यादा करुणा में भीगी होती, लेकिन बस्ती के ज्यादातर लोग उसे 'पियक्कड़ पीटर की नशीली आवाज' कहकर हंसते. आवारा लड़के उसका मजाक उड़ाते. गैरेज के पीछे ही उनका घर था. घर के सामने नीम का झाड़, झाड़ के नीचे भिखारी बैठा रहता. जब पीटर मासूम बच्चे की तरह रोने लगते, तब वह भिखारी उन्हें समझाता.

जिस समय पीटर एडविन की याद में बेचैन रहते, वह समय नानी के लिए प्रार्थना का समय रहता. हिल्स के पेड़ अंधरे में छिपने लगते. सड़क पर लैंप-पोस्ट का उजाला और सन्नाटा उतर आता. पीटर की पत्नी और क्लारा करीब के गिरजाघर से लौटते. कभी-कभी नानी पीटर को बुलाकर समझाती. गिरजाघर जाने और बाइबल पढ़ने की सलाह देती. अपनी जिंदगी के तकलीफदेह हिस्सों को सुनाती.

सहयोग

■ सीतेश आलोक

दोनों में बड़ी दोस्ती थी. . .वही एक, अंधा और एक लंगड़ा. दोनों ही दुखी थे.

"आज एक अंधे, लंगड़े की कहानी सुनी. . ." एक दिन भीख से लौटकर अंधे ने लंगड़े से कहा, "हमें भी कुछ करना चाहिए."

"सुनी तो मैंने भी . . .पर. . .पर उनकी बात अलग थी. वहां तो आग लगी थी. यहां तो. . ." अंधे को लगा वह बात चलेगी नहीं.

"यहां भी तो आग ही लगी है. . ." लंगड़े ने कहा.

"कहां. . ?"

"पेट में. . .तुम्हारे पेट में, मेरे पेट में. . ." लंगड़े ने कहीं बहुत दूर देखते हुए कहा.

"वह तो है. . .पर किया क्या जाये?"

"वह मुझपे छोड़ दो. . ." लंगड़े ने इतने आत्मविश्वास से कहा जैसे वह उसका भी बोझ उठाने को तैयार हो. उसने अपनी योजना अंधे को बतायी.

अगले ही दिन दोनों अलग-अलग दिशाओं में चल दिये. कुछ ही दिनों बाद, दूर एक गांव में पहुंचकर अंधा घर-घर जाकर बता रहा था कि उसे भगवान ने स्वप्न में बताया कि इस गांव के उद्धार के लिए उन्होंने अवतार ले लिया है. . .अगली पूरनमासी को वे लंगड़े भिखारी के रूप में इस गांव में आयेंगे. गांववालों ने उनकी बात मानी और सेवा की तो सबके दिन फिर जायेंगे.

बहुत दूर दूसरे एक गांव में लंगड़ा भी कुछ वैसा ही प्रचार कर रहा था. . . अगली पूरनमासी को स्वयं भगवान अंधे भिखारी के रूप में प्रगट होंगे. कोई सुख पाना चाहे तो उनकी सेवा करके जनम सफल कर ले.

पूर्णमासी के कुछ दिन पहले ही अंधे और लंगड़े भिखारियों ने अपने-अपने गांव छोड़ दिये और निश्चित दिन पर एक-दूसरे के गांव में भटकते हुए जा पहुंचे.

पता नहीं, उन गांववालों में से किसी के दिन फिरे या नहीं पर उन भिखारियों के दिन अवश्य फिर गये. गांववालों ने उनके लिए मठ बनवा दिये हैं और वे संपन्नता के साथ दिन बिता रहे हैं. □

● के 4/12, मॉडल टॉउन, दिल्ली-9

पीटर नानी की बातों को गंभीरता से सुनते, लेकिन दूसरे ही दिन फिर शराब के नशे में बड़बड़ाने लगते.

पीटर को इस तरह से नष्ट होते देखकर नानी को गहरी तकलीफ होती. वह अपने बेचारे पीटर के लिए जीसस से प्रार्थना करती. नानी की उम्र दुख को देखने और छूने की उम्र थी. ऐसी उम्र जिसमें दुख को पेड़ की तरह देखा जा सकता है, छुआ जा सकता है.

जिस समय क्लारा मैट्रिक में थी, उसी साल पीटर मरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे. वे अक्तूबर के दिन थे. अस्पताल के गलियारे की बेंच पर ही उनकी मौत हुई थी. उस समय वह अपने अस्पताली बिस्तर से उठकर बाहर गलियारे में बैठे थे. उनकी मौत ने जितना अकेलापन क्लारा को दिया था, उतना ही नानी को. टीन से घिरा गैरेज, अकेला बैठा भिखारी और शाम का अंधेरा पीटर के बिना किसी अनाथ बच्चे की तरह उदास रहता. उस समय पीटर की मौत मेरे लिए दुनिया के सबसे ज्यादा दुखी आदमी की मौत थी. कई दिनों तक उनकी गैरेज के सामने गाड़ियां आकर रुकती रहीं थीं. गाड़ी से कोई अजनबी व्यक्ति उतरता.

"यहां पीटर मेकेनिक काम करते थे?" वह अजनबी पूछता.

"उनकी मौत हो गयी है." बस्ती का आदमी जवाब देता.

"कब?" अजनबी पूछता.

"इसी जाड़े में अक्तूबर के किसी दिन."

वे लोग दूरदराज शहरों से आते थे, अपनी गाड़ियां सुधरवाने.

बाद में गैरेज में ताला लग गया था. पीटर की पत्नी पहाड़ी के होस्टल की मेस में काम करने लगी थी. क्लारा अपनी परीक्षा की तैयारी करती रहती. कभी-कभी क्लारा के साथ सेमिनरी हिल्स की मेस तक जाना पड़ता. यह बुधवार की शाम का समय होता. उस दिन लूर्द माता के मंदिर में काफी लोग आते. क्लारा अपनी मां को साथ लेने के लिए मेस तक जाती. मैदान में होस्टल के छात्र फुटबाल या वॉलीबाल खेलते रहते. कभी-कभी होस्टल के किसी कमरे में पियानो की आवाज आती. किसी कमरे में टेबल-लैंप के उजाले में खुली किताब दिखती, तो किसी कमरे में दीवार पर ईसा मसीह की तस्वीर. मरियम की प्रतिमा के पास मोमबत्तियां जलती रहतीं.

शाम के पहाड़ी अंधेरे में क्लारा, उसकी मां और मैं मंदिर की तरफ उतरते. मंदिर ढलान पर बना था. लूर्द माता के मंदिर में कई मोमबत्तियां जलती रहतीं. मंदिर के सामने भिखारी खड़े रहते. जिस समय क्लारा और उसकी मां प्रार्थना कर रहे होते, उस समय मैं मंदिर के पत्थरों पर खुदे हुए शब्दों को पढ़ने की कोशिश करता... 'द ग्रेटेस्ट ग्लोरी ऑफ मैन इज नॉट फालिंग नेवर...' मुझको तकलीफ से पढ़ते हुए देखकर क्लारा उस वाक्य को पूरा करती.

"ग्लोरी का मतलब?" मैं पूछता. मेरे पूछने पर क्लारा उस वाक्य का पूरा अर्थ समझाती, लेकिन उस समय मेरी चेतना पर क्लारा की उदासी तैरती रहती.

पीटर की मृत्यु के बाद क्लारा उदास होती गयी. वह स्कूल से लौटकर नानी के पास चली जाती. नानी को दवाइयां देती. बाइबल पढ़कर सुनाती. अपनी परीक्षा की तैयारी करती. किसी-किसी शाम मैं नानी के पास चला जाता. साहब की टेबल पर धूल रहती, सड़क की आवारा धूल. सिगरेट के टुकड़ों और माचिस की तीलियों से एशट्रे भरा रहता. पुराने अखबार, पेपरवेट, और पत्रों से पुरानी मेज भरी रहती. कभी नानी अपने बचपन के दिनों के बारे में बताती, तो कभी सेमिनरी हिल्स के बसने की गाथा सुनाती. नानी के पास बैठकर मैं उनके मरते हुए चेहरे को देखता रहता.

पीटर सर्दियों के दिनों में मरे थे. उनको गुजरे हुए एक साल हो रहा था. उन्हीं दिनों बंगला देश का मुक्ति संघर्ष शुरू हुआ था.

ऐसी ही किसी युद्धपीड़ित रात में नानी मरी थी. वह नवंबर की कोई रात थी. अंधरी और सर्द रात! सुबह उनके घर में संवेदनाएं व्यक्त करनेवालों की भीड़ थी. नीले रंग की विक्टोरियन पोशाक में उनकी मृत देह पलंग पर रखी थी. उनके सिरहाने के पास स्टूल पर उनका चश्मा था, जो नानी की आंखों से हमेशा के लिए दूर हो गया था.

शाम के समय नानी की शवयात्रा निकली थी. कब्रिस्तान नजदीक ही था. सफेद दीवारों से घिरा हुआ. दीवारों की दयनीय हालत से लगता था कि वह कब्रितान काफी पुराना रहा होगा. उसमें अठारहवीं सदी की भी कई कब्रें थीं. मैं पहली बार किसी कब्रिस्तान में गया था, इसलिए एक-एक कब्र को उत्सुकता से देख रहा था. उनमें एक कब्र एक अध्यापक की थी, जो अकालपीड़ित लोगों की देखभाल करते हुए मरे थे. लौटते समय मेरी आंखें दूर अंधेरे में खड़ी क्लारा पर रुकी थीं. वह मिट्टी से ढकी एक कब्र के पास खड़ी थी. उसके शरीर पर नीले रंग की स्वेटर थी. वह रो रही थी. कब्र के ऊपर लोहे का क्रास गढ़ा हुआ था. क्लारा के पास एक मोमबत्ती जल रही थी.

वह कब्र बूढ़े पीटर की थी! □

● **स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, विदिशा (म. प्रदेश.)**

आदमी और अपराधी

गर्मी की उमस भरी रात और मच्छरों का प्रकोप समूचे गांव की नींद हराम कर चुका था. लोग घर के बाहर आंगन में अपनी-अपनी चारपाइयों पर पड़े करवट बदल रहे थे. यही हालत लम्मरदार की भी थी. इतने में उन्हें लगा कि कोई चोर घर में घुस गया है. लम्मरदार उठकर बैठ गये और चोर की तरफ लपके. तब तक चोर भागा और चारदीवारी फांदने लगा. लेकिन इस बीच उसका एक पैर लम्मरदार की पकड़ में आ गया. चोर समझ गया कि अब तो पकड़े ही गये. फिर भी उसने बुद्धि से काम लिया और चिल्लाया, "फोड़ा! फोड़ा!"

चोर के 'फोड़ा-फोड़ा' चिल्लाने से लम्मरदार ने समझा कि वाकई इसके पैर में फोड़ा होगा और वह दुख रहा होगा. यह सोचकर उन्होंने चोर का पैर छोड़ दिया और चोर भाग गया. चोर खुश हुआ होगा कि वह पकड़े जाने से बच गया. लेकिन लम्मरदार भी कम खुश नहीं हुए... यह सोचकर कि पराये दुख में शामिल होकर उन्होंने 'आदमी' की परिभाषा को उबार लिया है! □

—सुमिता चक्रवर्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरारत. . .शरारत. . .

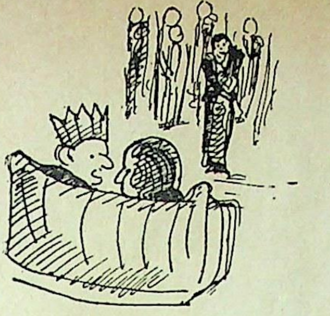

पति के शत्रु के साथ

बात गत शताब्दी की है. . . जब इंग्लैंड में डिजरेली प्रधानमंत्री था और ग्लेडस्टन विरोध पक्ष का नेता. इसी समय अफगानिस्तान में हबिबुल्लाह राजा थे. एक बार राजा हबिबुल्लाह लंदन गये थे.

उन्हें ले जाकर हाउस ऑफ कॉमंस में बैठाया गया ताकि इंग्लैंड के प्रजावाद से वे परिचित हों. प्रधानमंत्री डिजरेली ने एक बिल प्रस्तुत किया, और विरोध पक्ष के नेता ग्लेडस्टन ने उसका सख्त विरोध किया! ग्लेडस्टन के आक्रामक विरोध के बावज़ूद बिल पास हो गया.

फिर राजा हबिबुल्लाह प्रधानमंत्री से मिले. राजा साहब गरम हो चुके थे. उन्होंने डिजरेली को दो तगड़े अफगानों की सेवायें ऑफर कीं—ग्लेस्डटन का दिमाग ठिकाने लगाने के लिये!

प्रधानमंत्री ने बड़े विवेक से इस ऑफर को अस्वीकार कर दिया. बाद में रात को रायल बॉल-समूह नृत्य था. मालूम है वहां अफगान राजा ने क्या देखा?

विरोध पक्ष का नेता. प्रधानमंत्री की पत्नी के साथ नाच रहा था!. . . हबिबुल्लाह लगभग बेहोश हुए जा रहे थे, क्या मुल्क है? पति के शत्रु के साथ. . .!

कहां से बोल रहे हैं

लंदन का 'टाइम्स' बड़ा प्रतिष्ठित पत्र गिना जाता है. एक बार उसमें मृत्यु-विषयक खबर छपी. मरने वाले का नाम था—लॉर्ड बेस बोरो! यहां तक सब ठीक-ठाक था—लेकिन जिसकी जीवनी छपी थी वह दूसरा आदमी था. दोनों का नाम एक जैसा ही था, सिर्फ एक अक्षर का फर्क था. जिसकी जीवनी थी वह था, लोर्ड डेसबोरो!

सवेरे ऑफिस में पहले पहुंचने वाले पत्रकार जॉन लॉरेंस ने देखा कि टेलिफोन की घंटी बज रही थी. . .

जैसे ही उसने फोन उठाया फोन पर एक पुरुष-गर्जना सुनाई पड़ी, मैं लौर्ड डेसबोरो बोल रहा हूं!. . . देखो, आज सवेरे तुम लोगों ने मेरे मृत्यु की खबर छापी है—टाइम्स में. . .

ज्होन लोरेंस ने तुरंत ही कांपते स्वर में पूछा, 'योर लोर्डशीप! इस वक्त आप कहां से बोल रहे हैं?. . .'

▣ प्रस्तुति : चंद्रकांत बक्षी

▣ रेखांकन : अल्पना शर्मा

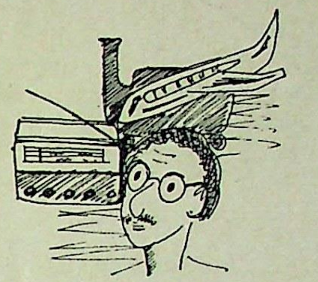

ले आयी फिर कहां पर किस्मत हमें कहां से!

उसका नाम था—लुईस शेवरोलेट! वह रेसिंग-कार ड्राइवर था और मोटरकारों के देश अमरीका में डेट्रोइट नगर में रहता था. मोटरकारों के शुरू के दिन थे. डब्ल्यू सी. डुरंट नामक आदमी ने शेवरोलेट से कहा कि हम लोग मोटर कारें बनाना शुरू करें. डुरंट को खास जानकारी नहीं थी. शेवरोलेट जानकार था. दोनों ने मिलकर 1911 में शेवरोलेट मोटर कंपनी की स्थापना की. मगर शेवरोलेट अनुभवी था. उसे इस कंपनी का भविष्य उज्जवल नहीं दिखायी दिया. तीन वर्ष साथ काम करने के बाद शेवरोलेट अपना हिस्सा लेकर बाहर निकल गया. और चक्रवत परिवर्तन में शेवरोलेट मोटरकारें विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय बन गयीं!. . . इस मोटर को अपना नाम देने वाला लुईस शेवरोलेट डेट्रोइट नगर में 62 वर्ष की आयु में गुजर गया तब दुनिया उसे पहचानती भी नहीं थी!

ले आयी फिर कहां पर किस्मत हमें कहां से!

कीप चेंज

मिस्टर विलियम बल्मर टेलीविजन किराये पर देने वाली एक कंपनी का मालिक था. वह उस होटल में लंच के लिए आता था.

मिस्टर बल्मर शांत स्वभाव का आदमी था. खास कुछ बोलता न था.

एक दिन मिस्टर बल्मर का देहांत हो गया और लोग उसे भूल भी गये. होटल उसी तरह चलता रहा और मिस शेफर्ड उसी तरह ग्राहकों को लंच सर्व करती रही. . .

दो साल के बाद कोर्ट से खबर आयी. स्व. विलियम बल्मर ने अपनी संपति का एक बहुत बड़ा हिस्सा मिस वेलेरी शेफर्ड को दे दिया था! वह हिस्सा था—दो लाख पैंतीस हजार डालर (तेइस लाख पचास हजार रुपये!)

19 वर्षीय वेलेरी ने कहा, 'हां, सप्ताह में पांच बार मैं उन्हें लंच सर्व करती थी. . . मगर वे खास कुछ बोलते न थे. . . उनको खास कुछ पहचानती नहीं थी. . .' अगर इसे 'टिप' माना जाये तो यह विश्व की सबसे बड़ी टिप होनी चाहिए! ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

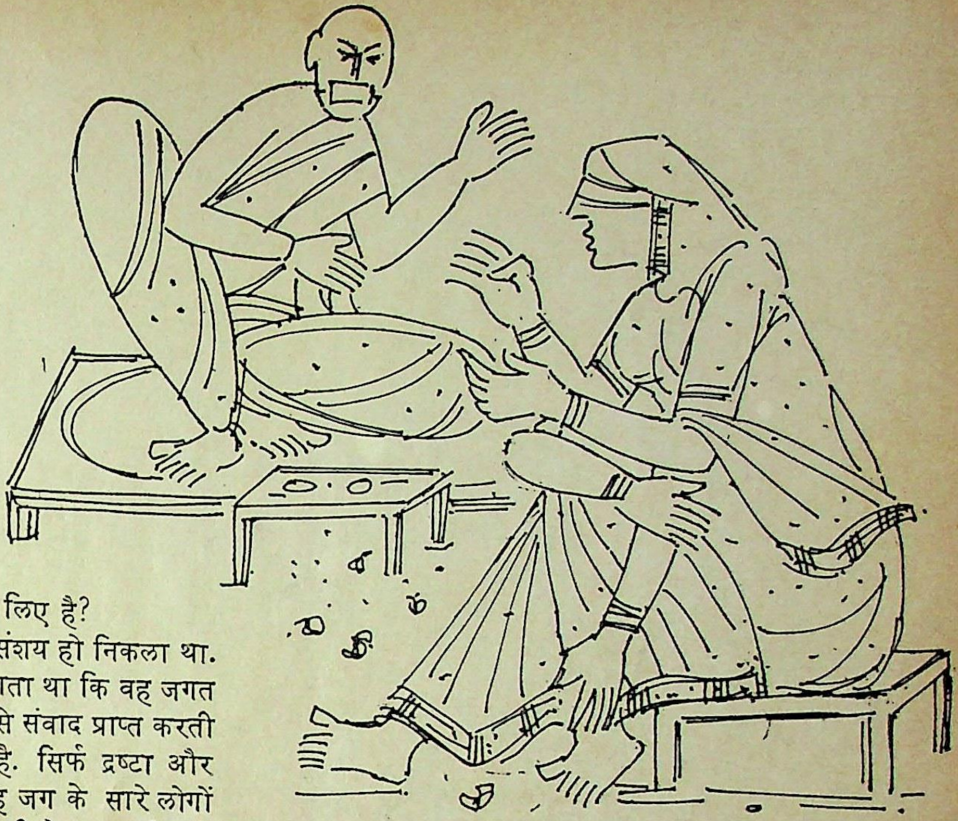

दशार्क

• जैनेंद्र कुमार

धारावाही उपन्यास : ग्यारहवीं किस्त

आप पढ़ चुके हैं

बड़े घर की एक लड़की साधारण घर के एक यूनिवर्सिटी टॉप लड़के की पत्नी बनी. सात बरस बीत गये. परिस्थितियां बिगड़ीं, उसने पत्नीत्व के अधिकार से वंचित कर दिया. पत्नी का अंत हुआ और एक नव-रमणी का आविर्भाव, देह-व्यापार करने वाली एक संवेदनशील मानुषी. देह को वह मूलधन मानती है और इसे खर्च करने में विश्वास नहीं करती. दरवाजे पर बोर्ड 'कन्सलटेंट' का लगा है. पुरुषों से मिलने की फीस हजार रुपया लेती है. विभिन्न प्रकार के लोग उसके पास आते हैं और उसके जीवन दर्शन के कायल होकर लौटते हैं. एक फ्रांसीसी युवक पियेर जो कभी उससे मिला था, उसके विचारों को लेकर एक लेख लिख बैठा. उसके छपने पर काफी प्रतिक्रिया हुई और उसी कारण एक अमरीकी पत्रकार उससे मिलने आया और अपनी पत्रिका के लिए उसका इंटरव्यू किया.

अमरीकी पत्रकार उससे मिलकर क्या गया कि 'रंजना के लिए संकट पैदा कर गया. वहां के पत्रों में कई कोणों से उसके चित्र छपे शीषक दिया गया 'एवुमन डिस्टर्बिंग सब्सटेंस' आगे भी अजब भाषा थी. 'वश्या? हां, लेकिन अंतरदर्शी संत भी''सर्व-सुलभ पर अजीब दुर्लभ! ...' पत्रिका का पूरा एक पन्ना ऐसी भाषा से भरा था और उसके उद्धरण यहां भी जगह-जगह निकले थे. इससे जैसे एक सनसनी फैल गयी थी और उसके बारे में उत्सुकता का उबाल आ गया था. उसे यह बहुत ही अटपटा और बुरा लगा. क्या वह अपने लिए नहीं है, दर्शन-प्रदर्शन के लिए है?

उसे अपने संबंधों में एक और भी संशय हो निकला था. वह अपने में त्रुटि पाने लगी थी. उसे लगता था कि वह जगत की है नहीं, हो नहीं पाती है, सिर्फ वहां से संवाद प्राप्त करती है. स्वयं जसे असंपृक्त ही बनी रहती है. सिर्फ द्रष्टा और दशक बने रहना उसे मंजूर नहीं है. वह जग के सारे लोगों के सुख-दुःख में सम्मिलित हो रहना चाहती है. . . पर देखती है कि वह जानती ही ज्यादा है, जीती कम है. उसे यही शिकायत थी कि साहित्य और दर्शन और धर्म के ग्रंथ बस द्रष्टापना दे गये हैं, जूझने की वृत्ति नहीं. उसे चिढ़ है, दार्शनिक-सा बनने से. लेकिन देखती है कि कहीं वह उसी माग पर तो फिसली नहीं जा रही है? देखती है कि जाननेवाला उसमें ऊपर आ गया है, जीनेवाला नीचे सिसक-सा रहा है. अपनी समाज व्यवस्था को इधर कोई पंजीवादी कहता है उधर दूसरा समाजवादी कहता है. दरअसल सब कहीं एक शोषणवाद (पेरासिटिजन है) कोरमकोर हिंसावाद. याने जो जीता है, एक दूसरे के लिए खटते हुए पसीना बहाते करते-बनाते-उपजाते हुए, वे ही पिस रहे हैं पावों तले आकर उनके जो हीन हैं श्रम से और प्रेम से. और जिन्होंने बस पैसों की और अनीति की युक्ति को साधा है. . . अपने संबंध में वह देख रही है कि सिर्फ ऊपर से नहीं, शायद अपने भीतर से भी वह कहीं उसी वर्ग के मानस को तो नहीं अपनाये जा रही है. जो देखता है, बताता है, सिखाता है, कराता है और बस इसी बूते सब सुख-सुविधा को अपने लिए हड़प रहता है. उसे लगता है कि यह बड़ा मारी दंभ और झूठ सभ्यता के नाम पर शासन कर रहा है और वह भी कदाचित उसी का अंग बनी जा रही है.

उसे अच्छा नहीं लग रहा है यह कि पहले दुर्जन, उच्छिष्ट अपराधी और रोगी माने जाने वाले वर्ग के लोग उसके पास आते थे तो अब शिष्ट सभ्य और संभ्रांत श्रेणी के लोगों का ध्यान उसकी ओर अधिक हो निकला है. अखबारों की यह करतूत उसे भली नहीं लगती. वह जानती है कि अगर समाज आज सीधा बना हुआ है, पुण्य नीचे है और पाप ऊपर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्याय के नाम पर अपराध कुर्सी पर बैठा है और पुण्य नीचे पड़ा अपराध माना जा रहा है तो यह कारगुजारी शब्दों का व्यापार करनेवाले पत्रों और पुस्तकों की है. चतुरजनों ने संचार साधन उत्पन्न किये हैं और उनके बल दुनिया के दिमाग को पलट डाला गया है. आदमी जीना चाहता है, लेकिन साधा जा रहा है. ट्रेन किया जा रहा है कि वह मारने और मरने को तैयार रहे. वह मारेगा, मरेगा, ताकि ऊपर वाले स्वा-मीजन बहाल रहें और जब लाखों-लाख युद्ध में मर चुकें तो वे जन आपस में संधि करके दुनिया को आधों-आध अपने में बांट लें. . .

इस रौ में जाने कैसे उसे उन नंगे मुनि विद्यासागर की याद आयी. दुनिया जिधर जा रही है, उधर जाते देखते हुए भी यह आदमी सब छोड़-छाड़कर दिगंबर क्यों बना! रूढ़िवादिता? गतानुगतिकता? धममूढ़ता? लेकिन हो जो वहां हो, पर जब सब सुख की ओर लपक रहे हैं तो अपने ऊपर दुःख को न्यौतने की प्ररेणा इसमें किस बल से हो सकी? जिससे भी हुई उसको मैं मूर्खता कहकर टाल नहीं सकूंगी. . .

उसने तय किया कि वह विद्यासागर के पास जायेगी. जानना चाहेगी कि क्या है वह सूत्र कि जहां से उन्हें प्रेरणा मिली और क्या है वह जो उसी लीक पर उन्हें रखे हुए है. और इसी धुन में उसने कागज खींचा और लिखा—"प्रिय पियेर,

तुम्हारे पत्र को तीन महीने हो गये. यहां से उत्तर नहीं गया. तुम बिगड़े होगे. लेकिन एक दिन को भी मैं तुम्हें भूली नहीं हूं. कैसे भूल सकती हूं?

सुनो, अपने एडीटर से फोन पर हुकुम पाकर मुझे ढूंढ़ता एक अमरीकी संवाददाता आया था. . . . तुमने ऐसा क्या कुछ लिख मारा है. . . क्या हमारे बीच तय नहीं हुआ था कि जब तक कोई सूत्र सिद्ध नहीं हो जाये, प्रसिद्ध नहीं किया जायेगा. . . हां, मैं मुक्तता में सिद्धांत रूप में विश्वास करती हूं. लेकिन अभी यह मेरे निकट भी सिद्ध होना शेष है कि इससे अराजकता को तो उत्तेजना नहीं मिलेगी? मुझे उन सब साधना विधियों में विश्वास नहीं हो सकता है जो इंद्रियों का दमन चाहती हैं. . . लेकिन इंद्रियों का अपना रस होने लगता है. क्या उन्हें खुली छूट मिलने दी जाये? इसी रोकथाम के लिए सबके भीतर विवेक है. . . किंतु विवेक की सीमा होनी चाहिए. विवेक मुक्ति में बाधक हो तो यह उसका अविवेक होगा. यानि वह अंदर के प्राणवेग के सामने अव-रोध बनकर नहीं आ सकता, उसे तट भर दे सकता है. . . यह बात हममें हुई थी न? और मैंने तुम्हारे यूरोप में चलने वाली 'परमिसिवनैस' का मजाक किया था. कहा था कि नहीं, वह नहीं, वह गलत है. सही मुक्तता है—बियौंड परमिसिवनेस. कहीं यही सब कुछ तो मेरे हवाले से लेख में नहीं छाप डाला? वैसा तुम्हें नहीं करना चाहिए था. और मैं चाहती हूं कि तुम यहां आओ कि तुमसे मन भरकर लड़ लिया जाये. पियेर, मुझे तुम्हारी जरूरत है. . . मुझे मालूम है तुम बहुत आगे बढ़ गये हो. एक बड़ा परिवार बटोर लिया है जिसे तुम आश्रम कहते हो. . . तुम लोगों की यह विशेषता है, सुना, सोचा, समझा और उतर पड़े व्यवहार में. . . अपने आश्रम से छूटना तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा. लेकिन तुम आ सकते तो मैं मानती मुझमें कुछ है. . .सुनो, मैं निर्वेयक्तिक संबंधों से उकताती-सी जा रही हूं. इनमें अपने को सुरक्षित रख लिया जाता है. तुम जानते हो, मैं अपनी सुरक्षा में विश्वास खो बैठी हूं. इसलिए सोच रही हूं. . . क्या सोच रही हूं. . .तुम हंसना मत. . . सोच रही हूं कि जो सात बरस से मुझसे अलग है, उस अपने शेखर को बुला भजूं. वह आया था और उसी मुंह से मैंने उसे वापस कर दिया था, नहीं, यह पूरा सच नहीं है. मैं तो घुल भी चली थी. वही अपने मान में वापस लौट गया था.

तुमसे इसी बारे में पूछना है. अनुमति लेनी है. . . हम बड़े प्यार की बात करते थे, तुम उधर काफी बढ़ गये हो—मैं लड़ते-बढ़ते, अब लगता है एक छोटे-छोटे प्यार की याद में तो कहीं वापस नहीं लौट आना चाहती हूं. तुमने पैसा कमाना छोड़ दिया है, मैं उसे बटोरती-सी मालूम होती हूं. तुम विवाह नहीं करोगे, मुझे लगता है कि मैं गिरस्ती में लौट रही हूं. . . मानती हूं, तुम आगे गये तो ऊंचे पहुंचे हो, और इसीलिए चाहती हूं कि तुम पास होते तो सलाह लेती. . ."

यहां तक आकर उसकी कलम रुक गयी. उसने इधर-उधर देखा, मानो किसी कोने से अपेक्षा हो कि उसे संकेत मिलेगा. दो-एक मिनट वह खोयी-सी रह गयी फिर उसने अधलिखे पत्र को अलग किया और कोरा कागज घसीटकर सिर्फ एक पंक्ति घसीटी, "आई नीड यू. लैटर फोलोज." फिर ऊपर पता और नीचे अपना नाम लिखकर घंटी देकर सेक्रेटरी को बुलाया, और फौरन यह केबल भेज-देने को कहा.

इसमें केबल गया, पत्र बीच में ही छूट गया. भावना का यह आवेग, यह आघात उसके लिए नया था. सधी-कसी उसकी जिंदगी थी. उसने माना था कि अपने में शिथिलता को किसी ओर से नहीं आने देना है. लेकिन अब इधर-उधर जाने किस-किस ओर से उसके लिए जो पूछताछ आने लगी, आग्रह-अनुरोध आने लगे तो उसमें भावावेग उमड़ा और उसे लगा कि उसे यहां से शायद अपने जीवन को फिर मोड़ देना होगा. उसने घंटी देकर पुरुष सेक्रेटरी को दुबारा बुलाया और कहा कि अभ्यर्थियों से आज के लिए माफी मांग ली जाये, कह दिया जाये कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है. जो नये हों उनसे लिया पैसा वापस लौटा दिया जाये, और फिर जाने किस झोंक में बिना विचार किये कि समय क्या है, अनुमति ली है कि नहीं ली है, वह विद्यासागरजी के पास जा पहुंची, उसी प्रकार फर्श पर माथा लगाकर प्रणाम किया, और एक ओर बैठ गयी.

मुनि व्यस्त थे. अनेक जन उनको घेरे थे और वह स्लेट से ही एक-एक से आवश्यक बात कर रहे थे. उन्होंने रंजना को देखा तो, पर विशेष ध्यान नहीं किया. बैठे उसे पंद्रह-बीस मिनट हो गये. भीड़ मुनिश्री के पास से धीरे-धीरे छंट रही थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लगता था कि महाराज को रंजना की उपस्थिति के कारण किसी प्रकार की जल्दी नहीं है. जल्दी, प्रतीत हुआ कि स्वयं रंजना को भी नहीं है. आखिर अंतिम व्यक्ति निबटा. महाराज ने स्लेट अलग की, हाथ से संकेत दिया और रंजना निकट आयी. द्वार के पास खड़े भक्त साधक को संकेत मिला कि अभी अन्य-प्रवेश को रोकें और मौन में ही हाथ का पंजा गोल हिलाकर पूछा, "कहो कैसे?" रंजना काफी पास आ गयी थी. पालकी का कोना दो फुट भर रह गया होगा. उसने सिर का पल्ला तनिक आगे किया और सिर्फ हाथ जोड़े बोली नहीं, उसे अपने पर विस्मय था. पूरे समय वह प्रतीक्षा में शांत बैठी रह गयी थी, चित्त में अधैर्य का कोई भाव नहीं आया था और यह उसके स्वभाव के अनुकूल न था. मन में आशा लेकर आयी थी कि वह मुनि से अपने लिए विशिष्ट व्यवहार पायेगी. यह आशा निराश ही हुई थी, लेकिन फिर भी उसने पाया कि उसके मन में किसी प्रकार का दंश नहीं है. कहीं तनिक अच्छा भी लगा था कि उसे अतिरिक्त मान्यता नहीं मिल रही है, वह सम सामान्य बन सकी है और बहुत गहरे मन से अपने लिए यही वह चाहती भी थी.

मुनिश्री ने ही कहा, "मानेक लाल ने अमरीकी पत्रिका मुझे दिखायी थी."

रंजना ने सुना. आशा की कि कुछ आगे आयेगा. लेकिन मुनि इतना कहकर चुप हो गये.

रंजना ने हारकर कहा, "पत्र लिखा है फ्रांस में उसको जिसने यह बखेड़ा शुरू किया मालूम होता है. उसे बुलाया है डांटने-डपटने के लिए."

मुनि मुस्कराये, "बखेड़ा क्यों कहती हो... कौन है वह?"

"एक फ्रांसीसी युवक है. था वज्ञानिक, अब डर है आध्यात्मिक तो नहीं हो रहा है. फ्रांस में मिला था. दो-एक बरस मुझसे छोटा होगा. मुझे नहीं मालूम उसने ऐसा क्या लिखा मेरे बारे में कि अमरीका का आदमी उसी नाते मेरे पास भेजा गया! बखेड़ा नहीं तो यह क्या है?"

"बिगड़ो नहीं, कीर्ति है!"

"ऐसी कीर्तियों से संसार ही नहीं बढ़ता? आपने तो संसार त्यागा है."

"क्यों तुमने खासी भीड़ नहीं देखी है अभी मेरे पास. सब संसारी थे. और सब सफल... तुम इसे त्याग कहोगी कि मैं इन लोगों से घिरा रहता हूं और आदर-भक्ति पाता रहता हूं! बहुत लोग तो इसे आसक्ति समझते, होशियारी समझते हैं. खासकर पढ़े-लिखे लोग. मानते हैं..."

"आप सच बताएं, अपने तप-त्याग से अंत में पाना क्या चाहते हैं?"

मुनि खुलकर हंसे और बोले, "तप-त्याग तुम्हें दीख ही रहा है. अच्छा सही. पर हर्ज क्या है उसमें. देखो न, कितनी मान-प्रतिष्ठा मिलती है उससे. मैं समझता हूं मान-प्रतिष्ठा जिसका नतीजा हो, उस तप-त्याग के लिए किसी समझदार के मन में आपत्ति नहीं हो सकती!"

"महाराज यों टालिए मत मुझे." बिगड़ के रंजना ने

नारी का आदर्श

■ जैनेंद्र कुमार

नारी के आदर्श या आदर्श नारी पर पर सीधे कुछ कहना मेरे लिए मुश्किल है. उसकी तस्वीर मैं दे नहीं सकता. आदर्श को किसी एक में बांधकर दिखाना खतरे का भी काम है. यों भी जिंदगी में एक ही को मानकर रह जाना मुझसे अब तक बन नहीं सका है. हर दूसरे में भी कुछ-न-कुछ खूबी देखने को रहती ही है. मालूम होता है आदर्श अनेक रूप हैं, उसके पहलू अनेक हैं और रंग अनेक हैं. सुंदरता को एक जगह निहारकर आंख रह नहीं पाती. सब कहीं उसकी छवि है, यद्यपि सब जगह झलक अलग अलग है. इस तरह आदर्श केंद्रित नहीं हैं, व्याप्त है. वह अरूप है और निर्गुण है. निराकर को आकार देना निर्गुनण को गुणों का परिधान पहिनाना, या अरूप को रूपाभा में जगा उठाना आसान काम नहीं है. वह काम शायद जरूरी और असली भी नहीं है.

आदर्श के लिए जान पड़ता है स्त्री का निर्गुण और रूपातीत होते जाना होगा. कुछ उस पर जमा या रुका न रहे. जैसे जल, कि पात्र के अनुरूप हो रहे जैसे धूप, कि उसमें रंग कोई हो नहीं अगरचे सब रंग उसमें हों. हर वातावरण में वह समरस हो सके और कही अनमिल न दीखे, यद्यपि उसे व्यक्तित्व कहीं खोना न पड़े. वक्त पर खूब बात कर सके लेकिन समय पर उसी तरह मौन भी रह सके. रसों को शास्त्रकारों ने अलग-अलग गिनाया है. स्त्री में कोई रस अलग नहीं चाहिए. यह नहीं कि मीठी ही मीठी हो खट्टी न हो, या खट्टापन इतना हो कि नमक की जरूरत जान पड़े. आवश्यक अनुपात में लगता है कि उसमे कड़वाहट भी चाहिए. और चरपरे स्वाद को मैं एकदम निषिद्ध ठहराने का कायल नहीं हूं. यह सब मिलाकर जो व्यंजन होगा उसके स्वाद को मैं कहूंगा निर्गुण. निर्गुण गुणहीनता नहीं है, गुणों का सामंजस्य है. जब अनुपात असामंजस्य होता है तब गुण ही अवगुण बना दीखता है. मुझे भय है कि निरीगुणाढ्य भार्या पति के लिए कष्टकर हो सकती है.

लेकिन सती गृहणी का धर्म कोई जकड़बंद वस्तु नहीं है, यह सती शिरोमणि राधा के आदेश से साफ हो जाना चाहिए. पति तो द्वार है, स्त्री का समर्पण पति के द्वारा असल से समष्टि-जीवन रूप परमेश्वर में ही पहुंचता है. ऐसी स्त्री की सहानुभूति के लिए सीमा नहीं रह जाती—न अधिकार पर अंकुश रहता है. समस्त समष्टि के साथ आत्मीयता का भाव उसमें खुला रहता है, यद्यपि केन्द्रच्युत होने की भी उसके लिए कभी आवश्यकता नहीं होती.

सीता और राधा के युग में जो सतीत्व का आदर्श प्रस्फुटित होता है उससे संपूर्णता मुझे और कहीं दिखाई नहीं देती है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, "जो आप सहते हैं कैसी भी बाहरी मान-प्रतिष्ठा से उसे तोला नहीं जा सकता. फिर क्या है जो आपको कायम रखता है, डिगने नहीं देता उस मार्ग से?"

"रंजना, तुम अपने जैसा मुझे मत समझो. तुम्हें अंतर-राष्ट्रीय ख्याति मिल रही है और तुम उसे सिर्फ बखेड़ा समझकर दौड़ी इस मुनि के पास, मानो उससे त्राण पाने आ गयी हो—क्या तुम सचमुच मानती हो कि मैं यश-कीर्ति से उतना निस्पृह हूं, विमुख हूं? होता तो पंथ में रहता?"

"आप कहें तो मैं चली जाऊं?" रंजना और बिगड़ी.

"हां, जिस प्रशंसा का भाव लेकर तुम मुझसे बात करने आती हो उसको मैं स्वीकार करना नहीं चाहता. मैं चाहता हूं कि आओ तो अपनी समीक्षा अपने में पूरी, भरी और जगी रखकर आओ. . . हां, तप-त्याग? . . . बताओ, हम किसलिए जी रहे हैं? तुम किसलिए जी रही हो? सब किसलिए जी रहे हैं?"

रंजना चुप रही.

"बोलो, कहो!"

रंजना सोचती रह गयी. कुछ भी नहीं बोली.

"मैं बचपन से सुनता आ रहा हूं. अब भी सुनता हूं, सब सुख के लिए जी रहे हैं. कह सकती हो कि नहीं—?"

रंजना बोली, "नहीं कह सकती हूं."

"पर मैं कह सकता हूं. कह सकता हूं कि हम सब मरने के लिए जी रहे हैं. सच यही है और धर्म यह कि हम ध्येय मानकर स्वेच्छा से मरने के लिए जीने लगें. मृत्यु को अंत नहीं, सिद्धि मानें. इस क्षण का ध्येय, और हर क्षण का प्रत्येक क्षण हम मृत्यु-पूर्वक जियें. . . तो जिसे तुम तप-त्याग कहते हो वह स्वेच्छा से यह मृत्यु-पूर्वक उसी के अभिमुख जीना है."

रंजना इस भाषा को एकाएक पकड़ नहीं सकी.

"तो इसलिए हम अपने को बढ़ाते घटाते हैं, कम करते हैं, कम करते-करते अगर शून्य तक पहुंच जायें तो बस यही मुक्ति है."

रंजना अब कुछ चेती, बोली, "कम करते-करते शून्य तक पहुंचना—हो सकता है?"

"मालूम नहीं, पर हम उसी मार्ग पर हैं."

"मोक्ष मार्ग?"

"हां, मोक्ष मार्ग."

"मृत्यु हमें शून्य बनाती है, मुक्ति देती है?"

"देह से तो मुक्ति देती ही है न?" मुनि ने हंसकर कहा. बीच में ही रंजना बोली, "और वही मोक्ष?"

"हां, वही." मुनि दृढ़ होकर बोले, "अगर मृत्यु स्वेच्छा से प्रेमपूर्वक हो."

रंजना उस दृढ़ता से छूकर रह गयी. कुछ जैसे उसे सारे में कौंध गया. कुछ क्षण वह स्तब्ध रही फिर संभली, बोली, "देह से मुक्ति हर हालत में मुक्ति क्यों नहीं है?"

"क्योंकि गांठ रह जाती है, अहं की गांठ. उससे जन्म-जन्मांतर आवश्यक होता है. असंख्य योनियों में घूमता पड़ता है. सुने ये शब्द : भवचक्र, भवसागर, भवबाधा. चक्कर से छूटना है, सागर से पार होना है, बाधा को काटना है. और बाधा यानि हो और होते रहने से ही निस्तार पाना है."

"अहम् की गांठ आपने कहा. वह कट सकती है?"

"हमारा यही प्रयत्न है."

"ज्ञान से काटने का."

"हां, और साधना से."

"ज्ञान-साधना," रंजना बोली, "से कट जायेगी गांठ अहम् की!"

"हम तो बस प्रयास में हैं. आगे कौन जाने."

रंजना जैसे आयी उस बात पर जो भीतर ही भीतर उसे एक लंबे समय से कुतरती सी रही है. बोली, "महाराज, क्षमा करें तो कहूं कि गांठ वह कट नहीं सकती. काटने के प्रयास में कस सकती है."

मुनि महाराज ने सुना और अतिरिक्त ध्यान से रंजना को देखा. उत्तर में बोले नहीं, मानो सुने को गुनते हों.

साहसपूर्वक रंजना ने कहा, "मेरा अनुभव अल्प है. पर है यह कि गांठ कटती नहीं, घुलती है. ज्ञान काटता है, घुला नहीं पाता और प्रेम . . ."

मुनि ने रोका. हंसे, बोले, "मैं समझता था आओगी तो तुम वेश्या की बात लेकर आओगी परीक्षा लेने मेरी."

"महाराज, हम स्त्री हैं. मुक्ति की कामना नहीं कर सकतीं. ठीक कहा है शास्त्र ने हमारे लिए कि. . ."

"रंजना, शास्त्र छोड़ो, तत्व-मीमांसा छोड़ो, होने और बार-बार होने की श्रृंखला से हमें तुम्हें छूटना है. मूल में अहम कटे या घुले यह सब अपनी अपनी जानें. मंजिल का किसे पता है. सब सफल हैं और यात्रा में सब अपने अपने को जानते-परखते रह सकते हैं. वहां तर्क नहीं, खुद हम-तुम हैं."

"एक बात कहनी थी, मेरी नहीं, वह और की है. कम करते-करते अंत तक क्यों न जायें, शेष बचा ही रह जायेगा, शून्य नहीं प्राप्त होगा. यह फ्रांस में पियेर ने मुझे अपने विज्ञान में से बताया था. पर विज्ञान तो. . ."

"ठहरो," मुनि ने आदेश दिया और नम्र अभीप्सा के स्वर में कहा, "फिर तो बताना वह विज्ञान की बात."

डरी हुई-सी रंजना ने कहा, "कटते-कटते, कम होते-होते अवशिष्ट रहता ही चला जायेगा. शून्य नहीं प्राप्त होगा."

महाराज ने सुना. सुनकर मौन हो उठे. आंखें उनकी मुंद आयीं. पूरा एक मिनट हो गया. मानों इन साठ सेकेंड वह समाधि में उतरे रहे फिर आंख खुली. बोले, "अब तुम जा सकती हो."

वाणी शांत थी और मंद किंतु अनुलंघनीय.

अगले अंक में

क्या मुनिश्री के पास रंजना के इस सवाल का जबाव था. . . क्या जैन समाज को मानेकलाल के इस घर में इस प्रकार आने-जाने पर कोई आपत्ति न थी? कौन सी चाह थी मानेकलाल की कि लौट-लौटकर रंजना की ओर खिंचे चले आते थे वे. . .?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

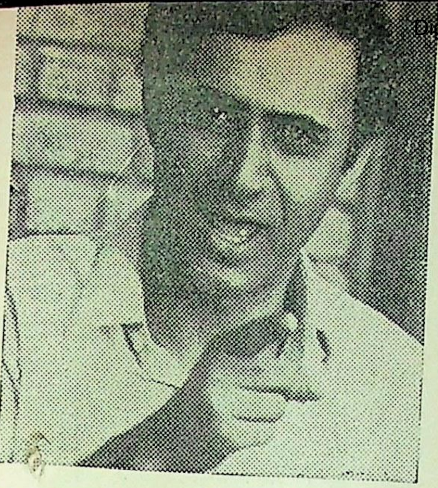

● रैना-रैना क्या-क्या कहना!

रंगमंच पिछले दस साल से एक जगह कदमताल कर रहा है!

एक यायावर कंधे पर बिस्तर डाले दिल्ली से कानपुर, भोपाल से पटना, कलकत्ता से जयपुर... एक शहर से दूसरे कस्बे, दूसरे गांव से अगले कबीलों की बस्ती में घूमता रंगमंच की खोज करता रहा... लेकिन थका नहीं. इस बीच कई पड़ाव आये. फिल्मों में जगह मिली. शादी भी हुई... एक अच्छी-सी गृहस्थी बन गई... लेकिन यायावर अब भी घूमता है. जरा देखिए कैसा है यह यायावर एम. के. रैना जिसे इस बार जा पकड़ा है हमारे सूत्रधार ने!

॥ भरतमुनि के वंशधर ॥ सूत्रधार

श्रीराम सेंटर की खुली कैंटीन की एक कुर्सी पर बैठे खाना खा रहे हैं रैना. सामने की कुर्सी पर अनीला सिंह बैठी हैं. सूत्रधार पूछता है...

—शुरू करूं?

—यार बैंक जाना था. चलो साथ-साथ बात करते चलते हैं, और बात-चीत शुरू हो जाती है.

थियेटर में आने का जोखिम क्यों उठाया?

—जोखिम? जोखिम क्यों! बचपन से ही शौक था, आ गया. एन. एस. डी. में दाखिला मिल गया. पढ़ाई पूरी की और रंगमंच में जुड़ गया. जबकि मैं साइंस का विद्यार्थी था. मैडिसिन मेरा प्रिय विषय था लेकिन क्या करता...!

आपने कहा, आप विज्ञान के छात्र रहे. विज्ञान और रंगमंच कत्तई अलहदा धुरी पर हैं...

—नहीं! साइंस ने मदद दी. विश्लेषण के धरातल पर, सोच की दिशा में, तर्क की उधेड़-बुन में भी मुझे काफी मदद मिली.

लेकिन साइंस तो फैक्ट है!

—थियेटर फैक्ट है.

रैना साहब! अब विज्ञान, सच्चाई, दर्शन, वगैरह-वगैरह से हटकर दूसरी तरफ आते हैं.

—आइए!

आप जो नाटक करते हैं... उसका चुनाव करते समय क्या देखते हैं?

—खुद को! समाज को! दर्शक को! और इस त्रिकोण पर चुनाव करते हैं, सामयिक विषय का. फिर उसके रूप, शिल्प और प्रस्तुती पर जाते हैं. देखिए हमारा दिमाग बिल्कुल साफ है कि हमें क्या करना है! जो करना है उसकी सार्थकता इसी में है कि हम रंगमंच के माध्यम से जो कहना चाहते हैं, अपने दर्शक को पहुंचा सकें. चाहे वह फार्म पारंपरिक हो, लोक-शैली में हो या प्रयोगात्मक, लेकिन हमें इतना अमूर्त नहीं होना है कि दर्शक के सामान्य कद से ऊपर उठकर हवा में उड़ जायें...

आप अपने दर्शक को विषय के माध्यम से, शिल्प और प्रस्तुती के माध्यम से जो कहना चाहते हैं क्या उसका कोई खाका पहले से ही दिमाग में बनाकर रखते हैं!

—हां, रखते हैं! जैसे शोषण के खिलाफ, भ्रष्टाचार और गैरबराबरी के खिलाफ, मानवीय यातना के खिलाफ, वे तमाम चीजें जो समाज के लिए हानिकारक हैं, उनके खिलाफ होना और मानवीय विकास के समर्थन में जुड़े तर्क का समर्थन करना ही हमारा पहला खांचा होता है. यहां एक बात साफ कर दूं कि इस खांचे के बारे में हमारी नियति भी दुरुस्त रहती है, सरकारी माध्यम की तरह नहीं कि भ्रष्टाचार के खिलाफ दूरदशन पर दिखा रहे हैं या आकाशवाणी से सुना रहे हैं तो वह इतना भौंडा होता है कि खुद में एक भ्रष्टाचार लगने लगता है. हमारे यहां इसकी कोई गुंजाइश ही नहीं है. अब हम आपको बताय, हम जो मैसज देते हैं... 'ओपेन हाइमर' को लीजिए. सारी दुनिया में अणुबम की चर्चा है. हथियारों के खिलाफ लोग खड़े हो रहे हैं. हम जब 'ओपेनहाइमर' को लेकर लोगों के बीच उतरे तो जाहिर है उस पर एक बहस चली...

रैना साहब! आप किस राजनीतिक विचारधारा से अपने आपको जोड़ते हैं?

—नहीं बताता! किसके साथ बताऊं. हर जगह हर एक के कन्फ्यूजन है. धमा-चौकड़ी है. और फिर इस हाल में हमारे जसे लोगों के लिए बहुत मुश्किल हो जाता है. यहां देखिए न, दिल्ली में लेफ्ट की बड़ी चर्चा चलती है. चौदह खानों में कम्यूनिस्ट छितरा गये हैं. हंसी आती है. लोग यहां कहीं होना फैशन समझते हैं, मैं नहीं हूं. मैं तो यह मानता हूं कि मान लो किसी दल से रिश्ता बने तो हमें इतना अधिकार होना चाहिए कि उसकी गलती पर हम उसकी धज्जियां उड़ा सकें.

भारतीय परिवेश में रंगमंच का विकास-क्रम क्या है?.

—एक चक्कर है! हम एक जगह पर खड़े होकर आगे बढ़ने, दौड़ने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ पा लेने का अभिनय करते रहे हैं. 'हम' का मतलब रंगमंच से है, जबकि सच्चाई यह है कि हम वहीं खड़े-खड़े कदमताल कर रहे हैं. नतीजतन जमीन में गड्ढा हो रहा है और हम नीच जा रहे हैं.

अब देखिए **ओम शिवपुरी, कुलभूषण खरबंदा, मोहन महर्षि** जैसे लोग भाग खड़े हुए. क्या दिया हमारे रंगमंच ने! उन दिनों अच्छे लोग थे, अच्छा रंगमंच था. हम दर्शक बना चुके थे. लेकिन आज देखिए, कितने ग्रुप हैं?

दलदल में आपकी स्थिति कहां है?

—मैं इस दलदल को भरने में लगा हूं. इन तमाम खामियों के नीचे से शुरू कर रहा हूं. क्योंकि मेरी नियति साफ है. मुझे सुपरहिट मसालेदार स्क्रिप्ट और मंच के उभर चुके कलाकारों को लेकर वाह-वाह कराने की जरूरत नहीं महसूस होती. क्योंकि मुझे मालूम है यह सब तात्कालिक होता है. अगर कभी इतिहास में खड़े होने की बात आयेगी तो... मालूम है वहां एक अदद रैना जरूर मौजूद रहेगा. क्योंकि मैं जानता और मानकर चलता हूं कि मैं एक नाटककार, निर्देशक, एक्टर होने के साथ-साथ इस समाज का एक जागरूक नागरिक भी हूं. इस नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं समाज को जगाता चलूं. कभी गुदगुदी करके, कभी चुटकी काट करके. क्योंकि मेरी मान्यता है कि रंगमंच मात्र मनोरंजन नहीं है. कुछ और भी है और यही जो 'कुछ' और है, यही इतिहास है, यही फर्ज है. और इसे मैं निभा रहा हूं.

इस दलदल को बनाया किसने?

—फंसाओगे तुम?. . . किसको कहें. सब के सब रहे. कुछ मुट्ठी भर लोग जो इसके बरअक्स रहे, दूर फेंक दिये गये. मजबूरी में उन्हें अलग-अलग डगर पर चलना पड़ा. कहने को तो कह दिया जाता है कि चले गये फिल्मों में. लेकिन यह भी उतना ही सच है कि क्या दिया उन्हें रंगमंच ने!

फलां क्रिटिक की फलां से दोस्ती है तो उसे निभाया जा रहा है. सच कहता हूं, यह अंग्रेजी के अखबार न होते तो पता नहीं कितने मंच उखड़कर अब तक फुटपाथ पर पहुंच गये होते.

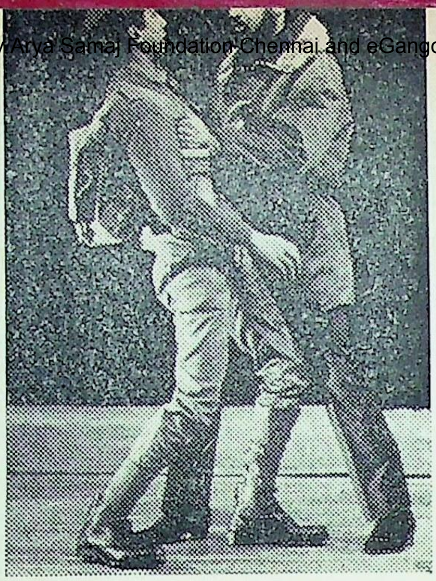

● **एंटीगोनी में जलीस और रैना**

मैं समझा नहीं!

—समझोगे भी नहीं! तुम हिंदी वाले हो न! मैं बताता हूं. .छापने की हिम्मत है तो छापो. 'सारिका' है एकमात्र कहानियों की प्रतिष्ठित पत्रिका. मुद्गलजी कितनी जगह हिंदी रंगमंच को दिये हैं?

इसीलिए तो आया हूं!

—स्वागत करता हूं. अंदर धुसो, मिलो, तब पता चलेगा कि हम हंसाने वाले लोग 'विंग' में खड़े होकर रोते भी हैं. 'सारिका' को हमारी तरफ से इस शुभारंभ की बधाई देना. अब देखो हिंदी के कितने पत्र हैं. 'धर्मयुग' में नाटकों पर क्या छपा है! वही **सत्यदेव दुबे**, वही **अमोल पालेकर. . .**

सत्यदेव दुबे के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है?

—भारतीजी (डॉ धर्मवीर भारती) से पूछो. वही जानते होंगे... बंबई रंगमंच के 'फिल इन द गैप' हैं!

अगर आपको फिल्मों में काम मिल जाये तो रंगमंच छोड़ देंगे?

—काम करूंगा. जमकर करूंगा. हिप्पोक्रैट नहीं हूं. फिल्म मिलेगी तो काम करूंगा. करता रहा हूं. फिल्मों में भी काम किया है. मैं रंगमंच से भी जुड़ा रहना चाहता हूं.

हां, आप दलदल के बारे बता रहे थे इसकी वजह. . .

—वजह! स्पष्ट है. कुछ तो हमारी गलती. कुछ मजबूरी. कुछ समाज की बुनावट. अब इसे खोलकर देखिए. स्थिति साफ हो जाती है. हम रंगमंच वाले लोक-शैली को, पारंपरिक स्थिति को, या प्रयोग को संपूर्णता से काट कर उस हिस्से को स्वीकार करने के आदी हो गये हैं, जो हमें अच्छा लग जाये. इसके लिए हम तर्क को नहीं देखते. मान लीजिए कहीं किसी नृत्य के दो 'स्टेप' पसंद आ गये, उसे ले लिया. कहीं 'फोक' का कोई 'फार्म' पसंद आया, उसे ले लिया. इसका कोई मतलब हुआ? विचित्र और हास्यास्पद स्थिति है. एक उदाहरण देता हूं. **'शेखनर'** का. 'आडिएंस पार्टीसिपेशन के नाम पर राम नगर (बनारस) की रामलीला का प्रभाव **चेखव** की रचना में उतारते हैं, कितना बुनियादी फर्क है. लेकिन वाह-वाह होती है!

अब आप अपने बारे में बताइए. 'जुलूस' से लेकर 'ओपेन हाइमर' तक की अपनी यात्रा के बारे में.

—हां! कुछ हुआ है! अब देखिए जुलूस या जुलूस के पीछे भी जाइए तो वहां एक गुस्से का प्रदर्शन था. लेकिन धीरे-धीरे वह समझ के साथ जुड़ने लगा है. उसके विकल्प की दिशा में, न केवल रंगमंच बल्कि व्यक्तिगत सोच में भी पहले गुस्सा आता था. अब भी आता है, लेकिन उसकी वजह सोचने लगा हूं. एक पुलिस वाला किसी को यातना देता है तो क्यों? और इस क्यों का जवाब ही आपके सवाल का जवाब है.

थिएटर में चर्चा है कि अलकाजी के बाद रैना उन डाइरेक्टर्स में से एक हैं, जो अपनी छाप एक्टर पर डालते हैं.

—मुझे नहीं लगता, मैं अपने एक्टर को खुली छूट देता हूं. अब तो यह ऐसी ही बात है जैसे तुम स्साला बनारस का है. मुंह खोलते ही पता लग जायेगा कि बनारसी है. सो, अब मैं उसके लिए क्या करूं लेकिन मैं उन्हें बेहूदा नहीं बना रहा हूं.

'एंटीगोनी' में आप के साथ आपकी बीवी अंजू थी.. कैसा था यह अनुभव?

—बहुत अच्छा था. हम लोग घर पर भी बैठकर लाइन याद करते रहते थे. चूंकि वह बहुत अच्छी नायिका है, समझदार है... वह एक टीम-वर्क था. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेलोड्रामा बनी एक त्रासदी

▣ चंद्रकांत बांदिवडेकर

☐ आत्मदान : नरेंद्र कोहली; प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, 5 ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (उ.प्र); मूल्य: 18 रुपये

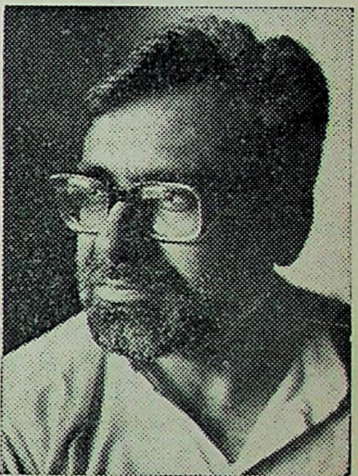

● नरेंद्र कोहली

नरेंद्र कोहली भारतीय अस्मिता और भारतीय संस्कृति से गहरा लगाव रखनेवाले आधुनिक लेखक हैं जिनका साहित्यविषयक उद्देश्य स्पष्ट है. वह उद्देश्य है पाठकों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर से परिचित करना, संस्कारों के धरातल पर जीवन के विवेक और कर्त्तव्यबोध से संपृक्त कराना. इस प्रकार के संस्कारी लेखक का अपने पाठकों से एक ठोस रिश्ता होता है. वह पाठक के प्रति एक शिक्षक का नाता बराबर निभाता चलता है. इसलिए जीवन के अनुभव से जूझते समय उत्पन्न होनेवाली उलझनें और गुत्थियां ऐसे लेखकों के सामने नहीं होतीं, उनके सामने सारी बातें ठोस और स्पष्ट होती हैं. परिणामतः जटिलता के अभाव में ये लेखक जो जो खोते हैं, उसे पाठक पर प्रभाव डालकर प्राप्त कर लेते हैं. नरेंद्र कोहली साहित्य की रूप विधा के बारे में उलझन में नहीं हैं. वे पाठक को एक कहानी बताना चाहते हैं और चूंकि चाहते हैं कि अंत तक पाठक कहानी में तल्लीन रहे, वे उस कहानी को रोचक सामग्री से भर देते हैं. नरेंद्र कोहली के पास कहानी कहने की शक्ति है और भाषा की खास शक्ति उनके पास है, इसलिए कहानी अंत तक पकड़े रहती है. अंत तक कहानी में उत्सुकता बनी रहे, इसलिए एक प्रकार के कथानक के अंतर्गत विरोध, संघर्ष और पूर्वदीप्ति से उद्भूत आत्मीय प्रसंगों से लैस तत्वों का वे उपयोग कर लेते हैं.

'आत्मदान' शीर्षक लघु उपन्यास में नरेंद्र कोहली के उपरोल्लिखित वैशिष्ट्यों का प्रत्यय मिलता है.

'आत्मदान' रसात्मक प्रसंगों का निर्माण कर लिखा हुआ उपन्यास है, जिसके कारण चारित्रिक वैशिष्ट्यों के कंगूरे रसात्मकता में विलीन हो गये लगते हैं. नरेंद्र कोहली के पास इतिहास की कुछ बीजघटनाएं हैं, बिंदु हैं, उनमें रंग और रेखा के माध्यम से वे जो भावनात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं, वह उनकी अपनी कल्पना का प्रदेय है. अपनी इस कल्पना का प्रचुर उपयोग कर कोहलीजी ने 'आत्मदान' की ऐतिहासिक सूक्ष्म कड़ियों को ठोस जीवंतता दी है.

यह राज्यवर्धन के करुणापूरित जीवन के दुःखद अंत की कथा है. भारतीय कालपट पर इतिहास के जो द्वंद्व घटित हुए, उनमें सत्-असत् की शक्तियों में द्वंद्व हुए हैं और इनमें सत् पक्ष की अनेक बार हार हुई है. यह इतिहास का कटु व्यंग्य रहा है और अन्य त्रासदी के बीज भी इसीमें निहित हैं. हमारी यह बद्धमूल धारणा रही है कि शक्ति सदैव वहीं होती है जहां 'शिव' का, अर्थात् नीति, न्याय, सदाचरण, सत्य का वास रहता है. रामायण-महाभारत के बाद भारत में जितने युद्ध हुए हैं, प्रायः उनमें भारतीय सांस्कृतिक गरिमा बर्बर सभ्यता से पराजित ही हुई है. फिर भी हमारे आदर्शवाद ने इस पराजय को बहुत बार विजय के रूप में ही देखा— हमने हार को सतीत्व से मंडित कर या आत्मदान का अलौकिक रूप देकर ही देखा. आश्चर्य है, फिर भी हमारे यहां अच्छी त्रासदियां नहीं बनीं. नरेंद्र कोहली ने अपने सांस्कृतिक सुझाव के बावजूद इस तथ्य को प्रस्तुत किया है. एक तरह से एक सांस्कृतिक त्रासदी की भव्यता इस छोटी-सी कथा को देने का प्रयास किया है.

राज्यवर्धन आरंभ से एक द्वंद्व में जी रहे हैं. क्षमता, ऊर्जा, धैर्य, पराक्रम, तेज के कारण महाभयानक हूणों के आक्रमण को रोकने में समर्थ हुए (कोहलीजी ने हूणों का यह भयावह रूप मिहिरकुल की प्रभविष्णु चरित्र-रेखा से प्रतीकित किया है) परंतु उनका सहज विश्वासी स्वभाव, उनकी मानवीय करुणा, शून्यवाद के प्रति आंतरिक सुझाव, हिंसा के प्रति ऊब और कुल विरक्ति की वृत्ति उनकी प्रखर मेधा और तर्कना को पराजित कर हार और मृत्यु को गले लगाने जैसे दौड़ पड़ती हैं. राज्यवर्धन की द्वंद्वात्मक विवशता असल में एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि समूची भारतीय संस्कृति की विवशता-सी लगती है. इस मृत्यु के प्रति अनजानी यात्रा को कोहली ने 'आत्मदान' कहा है. एक ओर राज्यवर्धन, हर्षवर्धन यशोवर्मा, भंडि इत्यादि सत्-शक्तियां हैं तो दूसरी ओर हूण, देवगुप्त, शशांक जैसी दुष्ट षड्यंत्रकारी, असत्-शक्तियां—इनके संघर्ष से भारतीय संस्कृति की उज्ज्वलता और उसे मलिन करनेवाली स्थितियों का चित्रांकन कोहली ने किया है.

जहां तक प्रसंग को दृक्-चित्र के रूप में परिणत कर प्रस्तुत करने की कला का प्रश्न है, डॉ. कोहली काफी हद तक सफल हुए हैं. इसलिए युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणराज्य दिवस 34वीं वर्षगांठ पर

राष्ट्र का संकल्प —

- उपलब्धियों का समीकरण
- राष्ट्र-निर्माण के लिए समर्पण
- ठाठ-बाट और दिखावे को तिलांजली तथा सादगीपूर्ण आचरण
- सभी सम्भव साधनों का दोहन

उज्ज्वल भविष्य का मूलमंत्र :— आपसी सहयोग और मिल बांटने की भावना

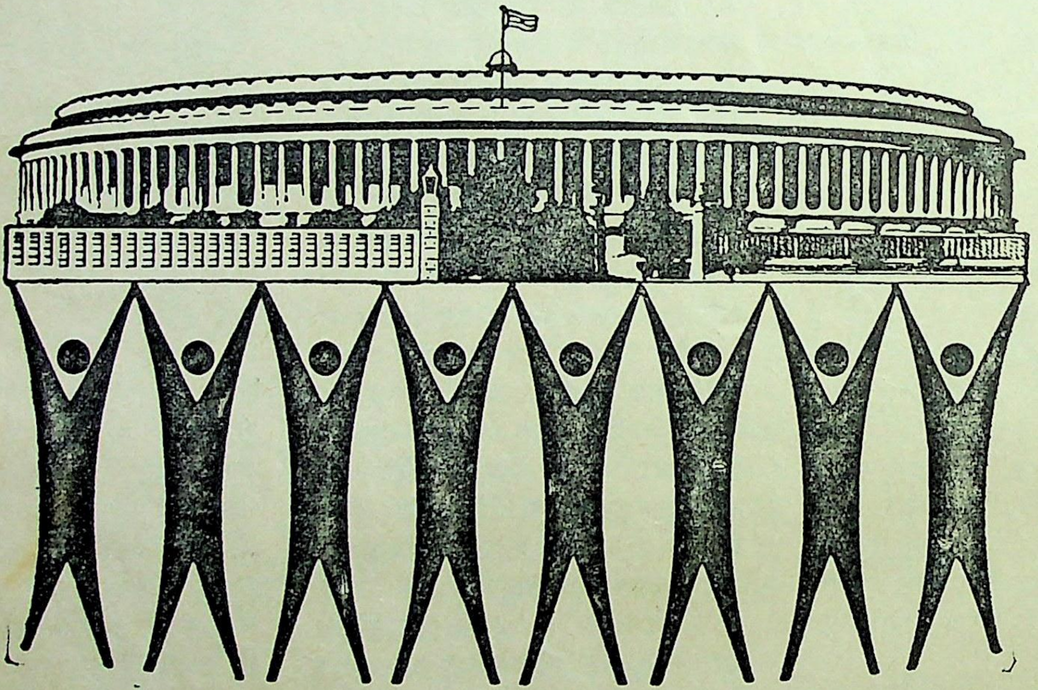

हमें कमजोर करने की कोशिश में लगी सभी ताकतों से सतर्क रहें।

आइए, आज और आने वाले कल के खतरों का सामना करने के लिए हम सब तैयार रहें।

83/436

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की व्यूह रचना, छोटे-बड़े समर-प्रसंग पाठक के मानस में युद्ध का आभास पैदा करते हैं.

परंतु यहीं पर कोहली की सीमाओं का भी भान होता है. कहानी को रोचक ढंग से प्रस्तुत करते समय उनका वाक्-प्रेमी नाटककार प्रसंगों की या संदर्भों की मनोवैज्ञानिक मांग और स्वाभाविकता की अनिवार्य शर्त को भुला देता है. उनके दो विरोधी दल के नेता (जिनमें एक अनिवार्यतः नीति और धर्म को तिलांजली देकर लड़नेवाला विजिगित्सु क्रूर व्यक्ति होता है). आमने-सामने आकर युद्ध के प्रचंड कोलाहल के बीच (बिना माईक के?) एक दूसरे को संबोधित कर पूरा भाषण देने लगते हैं. राज्यवर्धन के मानरू देवप्रिया और राज्यश्री की समान स्थितियों का एक रूपक कोहलीजी ने रचा है जो कल्पना की सूझबूझ के कारण सामान्य पाठक को भले ही प्रभावित करे, पूरी कथा की परिणति की दृष्टि से अस्वाभाविक लगता है. वंदिनी बहन राज्यश्री को मुक्त करने में शिथिल पड़े राज्यवर्धन के देवप्रिया की ओर झुकाव के स्खलन का दोष-निवारण करने के लिए यह पूरा 'नाटक' रचा हुआ लगता है. और इस कलात्मक स्खलन को पीठ में बाण लिये घायल अवस्था में पड़े राज्यवर्धन का लंबा मनोगत भी बचा नहीं पाता. यह सारा रचाव पाठक को मोहित कर सकता है परंतु रचना को सार्थकता के स्तर पर चढ़ने से रोकता है. राजा मिहिरकुल के प्रसंग के माध्यम से अगर राज्यवर्धन को हिंसा-अहिंसा, शक्ति-शिव, नीति-अनीति, वैयक्तिक मुक्ति और सामाजिक कर्तव्य-बोध के अंतर्द्वंद्वों के बीच से गुजारकर राज्यवर्धन को उभारा जाता तो यह लघु उपन्यास रोचक और भाव-स्पर्शी कहानी से अधिक ऊंचे स्तर पर चढ़ता. लेकिन कोहलीजी को एक तनावपूर्ण त्रासदी के बजाय एक ऐतिहासिक कथा-कृति को प्रस्तुत करना था. परिणामतः यह त्रासदी मेलोड्रामा बनकर रह गयी. परंतु अत्यंत रोचक कथाकृति का श्रेय इसने कोहली के आंचल में अवश्य डाल दिया है. ▣

युवा कहानी की प्रासंगिक संवेदनाएं

▣ राजकुमार गौतम

युवा कथाकार केशव की कथा यात्रा में उनका दूसरा कहानी-संग्रह 'अलाव' अभी-अभी प्रकाशित हुआ है. इसकी लगभग सभी कहानियों का स्वभाव शोरीले, नाटकीय, असहज-अस्वाभाविक या फार्मूलाबद्ध मुहावरों से अलग हटकर ज्वालामुखी के बाहरी पटल-सा शांत मगर ठंडा आतंक थामे हुए है. इस ठंडे आतंक का अर्थ पात्रगत दोहराव या एक ही कथ्य को रंग देने की एकरसता में नहीं जोड़ा जा सकता, केशव स्थितियों को जिंदगी के साथ मिलाकर जिस दृश्य का निर्माण करते हैं, वह उनके कहानीकार वैविध्य और उसकी क्षमताओं का प्रयास है.

इन कहानियों के माध्यम से विभिन्न परिवारों यानी सजीव पात्रों का महत्वपूर्ण जीवन-इतिहास व्यक्त होता है. उदाहरणार्थ 'अलाव' कहानी का यह टुकड़ा देखा जा सकता है : "इसे बापू का दुर्भाग्य कहें या गांव का, पंचायत चुनावों से लेकर संसद चुनावों तक बापू जिस पार्टी का भी दुमछल्ला बनता, वही पार्टी पिट जाती. इस बार भी ऐसा ही हुआ. नतीजतन पानी और बिजली फिर गांव से तीन कोस पर ही जाम हो गयी. गांव तक सड़क पर रखे पानी के पाइप रातों-रात गायब हो गये."

इस प्रकार यह लंबी कहानी परिवार व व्यवस्था के बीच का एक फूल बन जाती है तथा परिवारों के विघटन, दैन्यता तथा भविष्य के भ्रमों को उजागर करती हुई नायक के चरित्र को संघर्ष की एक जमीन सौंपती है—जबकि नायक गांव में ही रहने का निर्णय लेता है. अनुभव का संवेदन इस कहानी में अधिक प्रबल है, इसलिए मौत, अजनबियत तथा आधुनिक परिवार की बेबसी किंकर्तव्यविमूढ़ मुद्रा में खड़ी दिखाई देती है.

संग्रह की अन्य कहानियों में बेरोजगारी, मध्यवर्गीय मानसिकता द्वारा जनित वेश्यावृत्ति, नैराश्य की हताशा, व्यक्तित्व को बड़े, स्याह धब्बों में तबदील करती गटर भरी नौकरियां, निर्भरता की लंगड़ी छायाएं तथा व्यवस्था की लाठी हाथ में थामे जन-सामान्य का पिटते जाना, पराजित होना तथा 'चोर' को चोर न कह पाने की ठंडी भिंचन—ये आधुनिक त्रासदियां चित्रित की गयी हैं.

इन कहानियों की मौलिकता इनके थीम में नहीं है, बल्कि इन कहानियों के ट्रीटमेंट में है. 'छोटा टेलिफोनः बड़ा टेलीफोन' में यह ट्रीटमेंट बहुत तीखा तथा फ्लैट (भी) हो जाता है. इस दृष्टि से इन कहानियों की अपनी अलग दुनिया हैं जो अपनी तरह से, कहानीकार द्वारा चित्रित किया शब्दचित्र है. चुनाव, प्रेम, नौकरी, वेश्यावृत्ति, व्यवस्था-टकराव, अर्थ के आधार पर अपनी मूल से उखड़ जाने की विवशता आदि—ये सब विषय इन कहानियों को प्रसंगिता के दायरे में खींच लाते हैं. स्कूटर चोरी हो जाने पर थाने में रिपोर्ट लिखाने गये नायक का इस प्रकार से सोचना दृष्टव्य है : "दोस्त शायद उकता गया था. मैं भी उठना चाह रहा था. इस अंधे कुंए से क्या हासिल होने वाला था, जहां फरियाद की रस्सी डाले बैठे रहो, बैठे रहो, उम्मीद को बंदरिया की तरह मरे हुए बच्चे को छाती से लगाये." (छोटा टेलिफोन : बड़ा टेलीफोन)

ये सारी ही कहानियां शोषण के स्तरों से जूझते पात्र की मानसिकता को प्रस्तुत करती हैं. इन प्रस्तुतियों का गुण थीम के 'मौन' में है. थीम मुखर नहीं होने का गुण ही इन कहानियों को अधिक ग्राह्य बनाता है. शोषण से छुटकारा पाने की जहां कोशिश की जाती है, वहां इन पात्रों के हाथ विडंबना ही आती है. इस विडंबना से समय की संवेदना को छुआ जा सकता है और इसलिए ये कहानियां वह कथा-केंद्र हैं, जहां आज के व्यक्ति को आंख मींचकर ढूंढा जा सकता है. ▣

▣ 'अलाव', (कहानी-संग्रह): केशव; प्रकाशक : पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-32; मूल्य : 20 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

● महानिर्वाण में भाऊराव की भूमिका में कारंत

दो नाट्योत्सव

पिछले दिनों राजधानी दिल्ली के रंगप्रेमी एक अभूतपूर्व रंग अनुभव से गुजरे. रंगमंडल, मध्य प्रदेश के चालीस से अधिक नये-पुराने कलाकारों ने श्रीराम सेंटर के प्रेक्षागार में सात दिन तक भिन्न-भिन्न भाषाओं और बोलियों में सात नाटकों का मंचन किया तो राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पैरों तले की जमीन खिसक गयी, जो वैसे ही आजकल अपने जीवन-मरण के सवाल में बुरी तरह से उलझा हुआ है. **मालविकाग्निमित्र** (कालिदास), **'इंसाफ का घेरा'** (बर्तोल्त बेख्त), **'गोडा ला देखत हम'** (सैमुएल बैकेट), **'हयवदन'** (गिरीश करनाड), **'तीन बहनें'** (अंतोन चेखव), **'महानिर्वाण'** (सतीश आलेकर) तथा **'अंधायुग'** (डॉक्टर धर्मवीर भारती) जैसे सात बहुर्चचित नाटक प्रस्तुत करके मध्य प्रदेश रंगमंडल ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह अपने प्रादेशिक पिंजरे के बावजूद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से कहीं अधिक राष्ट्रीय (और अंतर्राष्ट्रीय भी) है और कुछ मामलों में तो उससे भी आगे. मध्य प्रदेश रंगमंडल के निदेशक ब. ब. कारंत की क्षमताओं के जीते-जागते नमूने थे ये सात नाटक.

चेखब का नाटक 'तीन बहनें' (निर्देशक : प्रसन्ना) लगभग एक शताब्दी पूर्व के रूसी समाज की जीवन स्थितियों का अवसादपूर्ण खाका खींचता है, जिसमें समाज पर औद्योगीकरण के पड़ रहे प्रभावों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है. अनीता के रूप में विभा मिश्र ने सब से अधिक प्रभाव छोड़ा. नाटक के भारतीयकरण ने इसे और भी ग्राह्य, और भी प्रभावशाली बना दिया था. इसी तरह बेख्त के नाटक **'इंसाफ का घेरा'** (निर्देशक : फ्रिट्ज बेनेविट्ज) का बुंदेली रूप भी ग्राह्य और प्रभावशाली हो उठा था. इस नाटक में रइया के रूप में विभा मिश्र ने प्रेमिका और मां की चुनौतीपूर्ण भूमिका में फिर बाजी मार ली. अजब दास की भूमिका में द्वारिका ने अपनी अविस्मरणीय छाप छोड़ी, कालिदास के नाटक **'मालविकाग्नि मित्र'** (निर्देशक : ब. व. कारंत) को भी बुंदेली रूप में ही प्रस्तुत किया गया, जो राजा अग्निमित्र और मालविका की प्रेमकथा है. इन दोनों नाटकों को बुंदेली रूप मदन सोनी ने दिया था, जो संतुलित और संतोषपूर्ण था. रंगप्रेमियों के लिए यह एक अनूठा अनुभव था, जब बुंदेली जैसी बोली विदेशी और देशी नाटकों में पूरी ठसक के साथ अपनी मिठास और गरिमा राजधानी दिल्ली को दिखा गयी और कह गयी कि हमें हाशिये पर मत डालो. इसके विपरीत छत्तीसगढ़ी में प्रस्तुत **'गौडाला देखत हन'** (निर्देशक : अलख नंदन) कोई अच्छा प्रभाव नहीं छोड़ पाया. इसके लिए दोषी नाटक की अमूर्तता है या इसका बुंदेलीकरण, कहना मुश्किल है. हां, **'महानिर्वाण'** में अलख नंदन ने अपनी निर्देशन क्षमता का भरपूर प्रदर्शन किया.

इस नाट्य श्रृंखला का सबसे अच्छा नाटक डॉक्टर धर्मवीर भारती का **'अंधायुग'** (निर्देशक : बंशी कौल) साबित हुआ, जिसे तमाम लोगों ने हाल में जगह न होने के कारण खड़े होकर भी देखा. □

● **बलराम**

राजधानी के नियमित नाट्य दर्शकों को पिछले दिनों एक नये अनुभव से गुजरना पड़ा. उन्हें परिपक्व कलाकारों, निर्देशकों तथा मंच सज्जा के रचनागत स्वरूप से अलग प्रायः 'अमान्यता प्राप्त' कलाकारों द्वारा सहज, निपुण मंचनों का ईमानदार आस्वाद तथा स्क्रिप्ट के महत्व को बढ़ाती भूमिकाएं श्रीराम सेंटर **में देखने को मिलीं. दिल्ली की** बिहार एसोसिएशन **के तत्वावधान में पटना की प्रमुख रंग संस्था** कलासंगम **का नाट्योत्सव पिछले दिनों यहां आयोजित किया गया था जिसमें** रामवृक्ष बेनीपुरी **का** अंबापाली, शरद जोशी **का** एक था गधा **तथा** डॉ. कुसुम कुमार **का** दिल्ली ऊंचा सुनती है **का मंचन किया गया.**

युवा निर्देशक सतीश आनंद **के निर्देशन में इन नाटकों के कथानक, चरित्र, भंगिमाएं, संवाद तथा पात्र के मंतव्य का संप्रेषण बहुत बारीकी तथा विश्वसनीयता के साथ, संपूर्ण अर्थवत्ता में मंच से उतरकर दर्शकों तक आया है. विशेष रूप से 'एक था गधा' में जो प्रधान और नियामक व्यंग्य है, उसे अर्थों के स्तर पर कई गुणा कर देने की सजगता इस उत्सव का विशिष्ट व्यक्तित्व था. 'दिल्ली ऊंचा सुनती है' में भी जो माधोसिंह के माध्यम से व्यवस्था द्वारा निर्धारित अंतर्विरोधों को खुलकर कह डालने का अवसर डॉ कुसुम कुमार ने प्रदान किया है, उसे अभिनय-प्रयासों से कलाकारों ने सिद्ध किया है.**

इस पूरे उत्सव में सतीश आनंद के अतिरिक्त बसंत कुमार **(गृहमंत्री वाली भूमिका) तथा सुमन कुमार (कोतवाल), 'अंबपाली' में युवा कलाकार-कथाकार** ऋषीकेश सुलभ **तथा** वाल्सा उप्पल **ने पात्रानुरूप भूमिका के द्वारा दर्शकों से स्वीकृति पायी है.** □

▣ **राजकुमार गौतम**

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का उपयोग और दुरुपयोग

▣ सुरेश उनियाल

वदों और उपनिषदों, रामायण और महाभारत के देश में पुस्तकें अपना महत्व क्यों खोती जा रही हैं? इसी का एक आकलन प्रस्तुत है विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर—

हमारे एक पड़ोसी थे. बहुत मिलनसार. जहां कहीं भी मिलते, बड़े प्यार से पेश आते लेकिन जब मैं उन्हें घर पर आमंत्रित करता तो वे 'फिर कभी' कहकर टाल जाते. यह बात मुझे खटकी भी. एक दिन मैंने इसका कारण पूछ ही लिया. उनका जवाब था, "भाई साहब, आजकल तो आप किसी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं. आप परीक्षा दे दीजिए, फिर खूब आयेंगे आपके घर."

"परीक्षा? मैं तो कोई परीक्षा नहीं दे रहा हूं?" मैं चौंका था, "आपसे किसने कह दिया?"

"आपकी भाभी (याने उनकी श्रीमती जी) बता रही थी कि आप हमेशा कुछ न कुछ पढ़ते-लिखते रहते हैं. हमने सोचा कि किसी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं."

पर क्या उनका सोचा गलत था? यह एक आम स्थिति है कि कोई व्यक्ति तभी पढ़ता है, जब उसे कोई परीक्षा देनी होती है. पुस्तक उसके लिए परीक्षा पास करने का एक साधन भर है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं. क्योंकि पुस्तक का इससे अधिक प्रत्यक्ष उपयोग कोई दिखता नहीं है.

इसके अतिरिक्त एक-दो उपयोग और भी हैं, मसलन, वक्त काटना. रेल में सफर करते हुए वक्त काटने के लिए सस्ते किस्म की जासूसी व रूमानी पुस्तकें काफी उपयोगी होती हैं, पर इन पुस्तकों को पढ़ते हुए कोई नहीं कहता कि आप कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं. न ही ऐसी पुस्तक पढ़ने के बाद आपको लगता है कि आपने कोई पुस्तक पढ़ी भी है. उपलब्धि मात्र इतनी रही कि आठ या दस या बीस घंटे सफर बिना किसी बोरियत के कट गया. यह भूमिका इस प्रकार की पुस्तकों के अतिरिक्त कई तरह की पत्र-पत्रिकाएं भी निभा रही हैं.

एक तीसरी तरह की पुस्तकें भी हम देखते हैं, जिन्हें अक्सर हमारे बड़े-बूढ़े खोलकर बैठ जाते हैं और सस्वर उनका पाठ करने लगते हैं. ये पुस्तकें उन्हें बिल्कुल कंठस्थ होती हैं. फिर भी वे नियमतः उनको पढ़ते हैं. जब भी कोई समस्या उनके सामने आती है, उन्हीं में से कोई उद्धरण देकर वे उसका हल भी चटपट निकाल लेते हैं. इस कोटि में आती हैं गीता-रामायण जैसी पुस्तकें. पर इन पुस्तकों को पढ़ना भी पढ़ना नहीं माना जाता. बल्कि एक प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है. जब कोई व्यक्ति ऐसी पुस्तक पढ़ रहा होता है तो हम यह नहीं कहते कि वह अमुक पुस्तक पढ़ रहा रहा है. बल्कि कहते हैं कि वह अमुक पुस्तक का पाठ कर रहा है. और यह कहते हुए हम भीतर से उसके प्रति श्रद्धा का भाव भी महसूस कर रहे होते हैं.

यहां पर एक बात ध्यान देने योग्य है. पहली दो स्थितियों में—याने जब हम किसी परीक्षा के लिए या वक्त काटने के लिए कोई पुस्तक पढ़ते हैं तो काम समाप्त होने के बाद हम अक्सर यह भूल जाते हैं कि उसमें क्या था. अगर कुछ याद भी रहता है तो वह समय के साथ-साथ धुंधला जाता है, पर यह तीसरी किस्म की पुस्तक हमें याद रहती है.

—क्यों?

—क्या धार्मिक ग्रंथ होने के कारण?

—शायद नहीं.

—तो?

इन सवालों पर मैंने कई बार गौर किया और अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अगर ये पुस्तकें हमें याद रहती हैं तो उसका कारण इतना ही है कि जीवन के विविध मोड़ों पर हमारे सामने जो विविध समस्याएं आ खड़ी होती हैं, उन्हें हल करने में ये पुस्तकें सहायक होती हैं.

याने पुस्तक का सबसे बड़ा उपयोग हमारे लिए मात्र मनोरंजन कर्ता या परीक्षाओं में सहायक के रूप में नहीं

▣ व्यंग्यचित्र : शौकीन गोयल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है बल्कि एक सलाहकार, एक मित्र और एक मार्गदर्शक के रूप में हैं.

पठन-पाठन की परंपरा भारत में बहुत पुरानी रही है. जब पुस्तकें नहीं थीं, जब कागज नहीं था, तब भी भारत में वाचन की परंपरा थी. दुनिया के सबसे पुराने ग्रंथ वेद इसी भारत की भूमि पर जीवित रह पाये. गुरु अपने शिष्य को वेद पढ़ाता था और शिष्य उसे कंठस्थ कर लेता था. फिर वह अपने शिष्य को पढ़ाता. इस प्रकार ये ग्रंथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे आते चले गये. तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुसार इनमें ऋचाएं जुड़ती चली गयीं. अध्यात्म, विज्ञान से लेकर कृषि तथा शिल्प तक की शिक्षाएं इनमें भरी पड़ी थीं.

हमारा संस्कृत साहित्य विश्व के प्राचीनतम साहित्य में से है.

यह सब जीवित रह सका और आज भी उपलब्ध है, इसका एक ही कारण है कि पुस्तकों के प्रति हमारे देश में रुचि बनी रही. जब तक यह बनी रही, हम ज्ञान, विज्ञान और कौशल में सबसे आगे रहे. आज हम पिछड़ रहे हैं तो इसलिए कि पुस्तक को हमने अपनी अनिवार्यताओं में में से हटा लिया है. हमारा वह मार्ग-दर्शक, सलाहकार, मित्र हमारे पास नहीं है. हम उससे कतरा रहे हैं.

प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार ने जहां पश्चिम में पुस्तक की लोकप्रियता को बढ़ाया, भारत में कम कर दिया. प्रेस ने पुस्तक की दुर्लभता को खत्म कर दिया. एक ही पुस्तक की हजारों और लाखों की संख्या में प्रतियां छपने से वह सहज उपलब्ध होने लगी.

यहां पर आकर पुस्तक के साथ पैसा भी जुड़ गया. पुस्तक जहां एक वर्ग के लिए ज्ञान का स्रोत थी, वहीं एक दूसरे वर्ग के लिए वह धन का स्रोत बन गयी. पुस्तक व्यवसाइयों का एक वर्ग तैयार हो गया. प्रकाशन उद्योग खड़ा हो गया.

यह एक संक्रमण स्थल था. यहीं से यह भी संभव था कि प्रकाशन उद्योग पुस्तक को घर-घर ले जाने में सहायक होता, पुस्तक की लोकप्रियता को और अधिक बढ़ाता, पुस्तक के प्रति लोगों की रुचि को अधिकाधिक विस्तृत करता, विविध प्रकार के ज्ञान से भरी विविध प्रकार की पुस्तकों से पाठक अपने को सुसंस्कृत करता और एक ऐसी पीढ़ी का निर्माण होता जो हर दृष्टि से संपूर्ण होती.

पर ऐसा नहीं हुआ. प्रकाशन उद्योग जिन हाथों में रहा, वे अधिकतर पुस्तक को एक जिंस ही मानते रहे. उनका ध्यान इस ओर रहा कि पुस्तक से कैसे अधिकाधिक लाभ कमाया जा सकता है. पुस्तक लाभ कमाने के अलावा कुछ और भी दे सकती है, इस ओर उनका अधिक ध्यान नहीं रहा. इसलिए दो बातें हुईं—पहली तो यह कि पुस्तकों के मूल्य बढ़े और दूसरी यह कि पुस्तकों का स्तर गिरा और घटिया किस्म की पुस्तकों से बाजार पट गये.

पुस्तकों के मूल्य बढ़ने से जो वर्ग सीधे-सीधे प्रभावित हुआ, वह था पाठक वर्ग. अधिक मूल्य देकर पुस्तक खरीदना सभी के वश की बात नहीं थी. चूंकि पुस्तक ऐसी अनिवार्यता नहीं रही कि व्यक्ति का दैनिक जीवन प्रभावित हो सके, इसलिए इस मूल्यवृद्धि के विरुद्ध कोई आवाज न उठी. लोगों ने केवल इतना किया कि पुस्तकें खरीदना बंद कर दिया. यदि पुस्तक भी अनाज की तरह जिंदा रहने के लिए कोई अनिवार्य चीज होती तो उसमें होने वाली मूल्यवृद्धि को इतनी सहजता से स्वीकार न किया गया होता. 1960 के मूल्यों की तुलना में आज जहां अनाज का मूल्य चार या पांच गुना बढ़ा है, वहीं पुस्तकों का मूल्य बीस गुना से अधिक बढ़ा है.

पुस्तक के पाठक के कम होने से पुस्तक व्यवसायी को कोई नुकसान नहीं हुआ. पुस्तकों को पुस्तकालयों तथा सरकारी विभागों ने खरीदना शुरू कर दिया. इनके लिए पुस्तकों के मूल्य अधिक होना कोई चिंताजनक बात नहीं थी. इनके पास पुस्तकें खरीदने के लिए एक निश्चित बजट होता है और उसमें जितनी भी पुस्तकें खरीदी जा सकें, ये खरीद लेते हैं. इससे यह भी हुआ कि स्तरीय पुस्तकों के स्थान पर उन पुस्तकों को अधिक महत्व मिलने लगा, जिनके लेखक की पहुंच इन खरीद संस्थाओं में थी.

अधिकाधिक लाभ कमाने की दृष्टि से एक और किस्म की पुस्तकें भी छापी गयीं. ये पुस्तकें थीं घटिया किस्म की जासूसी और रूमानी पुस्तकें. इन पुस्तकों के मूल्य कम होते हैं और सहजता से उपलब्ध हो जाती हैं. इस प्रकार पढ़ने की रुचि अगर कहीं बाकी थी तो इन पुस्तकों ने उन्हें अपना 'एडिक्ट' कर दिया. ये पुस्तकें उन्हें गुदगुदाती हैं, उनकी दमित वासनाओं की पूर्ति करती हैं और उनको एक ऐसे लोक में ले जाती हैं, जहां हमारे वर्तमान जीवन की-सी दुरूहताएं और चिंताएं नहीं हैं.

इस सबका परिणाम यह हुआ कि अच्छी पुस्तकों के अस्तित्व तक से सामान्य पाठक अनभिज्ञ होता चला गया और आज जो स्थिति है, उसका संकेत मैं इस लेख के प्रारंभ में ही कर चुका हूं.

अब भी समय है कि हम पुस्तक को अपने जीवन में लौटा लायें. इसके लिए जरूरी है कि पुस्तक को हम अपने सामाजिक जीवन का अंग भी बनायें. विवाह, जन्मदिन या अन्य अवसरों पर भेंट के रूप में पुस्तकों को देने की परंपरा आज भी भारत के कई भागों में मौजूद है. हिंदी भाषी क्षेत्रों में भी इस परंपरा को लाना होगा. अपने महीने के बजट में जहां और सारी जरूरी चीजों के लिए पैसा रखा जाता है, वहीं पुस्तकों के लिए भी एक निश्चित रकम होनी चाहिए. चाहे यह न्यूनतम दस रुपये ही क्यों न हो. हम नियम बना लें कि महीने-दो-महीने में कम से कम एक पुस्तक अवश्य खरीदें. हो सकता है, इससे तात्कालिक रूप से कोई लाभ न मिल सके, पर यह अवश्य है कि, हम आने वाली पीढ़ी को प्रबुद्ध बनाने में सहायक होंगे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

LINTAS SU.267.2015 HI

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो दे उसका भी भला !
जो न दे उसका भी भला !!
यह दुआ है या दुनियादारी...?

दुनिया में रहकर दुनियादारी को जानने के लिए जरूरी है कि हम सच में लिपटे हुए हर फरेब का पर्दाफाश करें. अतः प्रस्तुत है हजारों वर्ष पूर्व लिखी गयी 'पचतंत्र' की कथाओं की परंपरा में, देश के नौजवान लघुकथाकारों की करीब सौ लघुकथाओं से भरपूर एक नया और ताजा 'पंचतंत्र'.

लघुकथा विशेषांक

1 मार्च, 1984

शंकर रावी, विष्णु प्रभाकर, रमाकांत, रमेश उपाध्याय, कमल गुप्त, पृथ्वीराज अरोड़ा, कमल चोपड़ा, सतीश दुबे, भगीरथ, चित्रा मुद्गल, कृष्ण कमलेश, जगदीश कश्यप, बालेंदु शिखर तिवारी, मनीष राय, राजकुमार गौतम, पुणतांबेकर, पूरन मुद्गल, उद्भ्रांत, सिमर सदोष, उर्मिकृष्ण, शकुंतला अमर गोस्वामी, सुरेंद्र सुकुमार, विक्रम सोनी, अशोक गुप्ता, निशा व्यास, कमलेश श्रीनाथ, तरसेम गुजराल, ऋषि प्रियदर्शी, केवल सूद, श्याम किरण, अंजना अनिल, प्रेम जनमेजय, सुभाष अखिल, मधुकांत, कमल शुक्ल, गंभीर सिंह भारतीय, सुरेंद्र मंथन, श्रीकांत मीना, कृष्ण शंकर भटनागर, सुरेंद्र किशोर, राकेश तिवारी, बालासुंदरम् गिरी, राजेंद्र कुमार शर्मा, सुदर्शन वशिष्ठ, सुरेंद्र गुप्त, पालनी, विभांशु दिव्याल, हरिमोहन, जगवीर सिंह वर्मा, मालती महावर, रामनिवास मानव, प्रसाद सिंह, सुनील कौशिश, यश सरोज, आजाद रामपुरी, हरीश नवल आदि की पृथ्वीनाथ पांडेय, गुरमेल मडाहड़, अशोक, श्रीराम आयंगर, जोगेंद्र पाल, अंकुश्री, भूपाल सिंह, सौ से अधिक लघुकथाएं.

☐ **लघुकथा की कथा, कथाकारों के कथन में !**
—लघुकथा से जुड़े विधागत और रचनात्मक पहलुओं के बारे में अपनी राय दे रहे हैं—**विष्णु प्रभाकर, राजेंद्र यादव, मुद्राराक्षस, मनोहर श्याम जोशी** और **शानी**.

☐ **दशार्क**
—जैनेंद्र कुमार के धारावाही उपन्यास की अगली किस्त.

☐ **तुलसीदास चंदन घिसैं!**
—हरिशंकर परसाई के तीखे और तल्ख स्तंभ के अंतर्गत—'**उपेंद्रनाथ अश्क के दर्शन**'

☐ **मथुरादास की डायरी**
—प्रख्यात वैज्ञानिक डा. हरगोविंद खुराना के कागजात खोने का किस्सा दर्ज कर रहे हैं अपनी डायरी के पन्ने पर
—मथुरादास

☐ **अपनी बात, आपकी बात, पखवारे की पुस्तकें, हलचल आदि स्थायी स्तंभों सहित**

हंसते-हंसाते जिंदगी का तल्ख दर्शन कराने वाली रोचक, मनोरंजक लघुकथाएं और लघुकथा संबंधी कई अन्य जानकारियां पाठकों, विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए जरूरी ही नहीं बहुत जरूरी.

लघुकथा विशेषांक
रखिए अपने साथ, लीजिए हाथों-हाथ

शीघ्र प्रकाश्य

कोयल तोर बोलिया बैरन भई!

फागुन की फौहार की बीच अपने प्रत्येक पाठक के लिए एक-एक टीका गुलाल सहित, प्रख्यात व्यंग्यकारों की रचनाओं के जरिए जिंदगी को जिंदादिली से समझाने का उल्लास जगाता—

व्यंग्य-कथा विशेषांक

16 मार्च, 1984